नई कहानी की वर्ग चेतना

DISS
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY

यशपाल सिंह चौहान

भारतीय भाषा केंद्र की एम0फिल0 की
उपाधि के लिए प्रस्तुत
लघु शोध प्रबंध

भारतीय भाषा केंद्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110076

1978

विषय-सूची

प्राक्कथन

प्रथम अध्याय : पृष्ठभूमि 1-28

वर्ग की अवधारणा

वर्गों की उत्पत्ति और वर्ग चेतना

प्राचीन भारत की वर्गीय संरचना

आजादी के बाद का भारतीय समाज (वर्गीय संरचना)

आधुनिक भारत : घटनाक्रम और वर्गों की भूमिका

दूसरा अध्याय : नई कहानी 29-55

नई कहानी : पृष्ठभूमि और शुरुआत

नई कहानी : मुख्य प्रवृत्तियाँ

नई कहानी में चित्रित वर्ग

तीसरा अध्याय : नई कहानी की वर्ग चेतना 56-70

राजनीतिक संदर्भ

सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वैचारिक-दार्शनिक संदर्भ

परम्परा व विरासत का संदर्भ

चौथा अध्याय : उपसंहार 71-82

परिशिष्ट 83-87

प्राक्कथन

इसमें संदेह नहीं कि स्वयं "नई कहानी" आंदोलन के दौरान और उसके बाद भी नई कहानी को ले कर बहुत कुछ लिखा गया है और आज भी यह एक जीवंत चर्चा का विषय है। "नई कहानी" का विषय आज भी पुराना नहीं पड़ा है, इसका स्पष्ट कारण यह है कि आजादी के बाद नये कथ्य और नये शिल्प को ले कर उभरा यह आंदोलन ऐतिहासिक रूप से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसने हमारे देश की कहानी को एक परम्परा और भूमि प्रदान की है।

अपनी समग्रता में आज की कहानी, जहाँ नई कहानी के संस्कारों से मुक्त हो रही है, वहाँ उसी के साथ-साथ उससे जुड़ कर आगे भी प्रगति कर रही है। यह एक दो स्तरों वाली, द्वंद्वात्मक प्रक्रिया है। अमरकांत और हरिशंकर परसाई आदि की कहानियाँ आज भी जीवंत हैं, और इन कहानीकारों से जो परम्परा चली है वह कहानी की मुख्यधारा बनती जा रही है। आज की कहानियों में समाज का विरोधाभास अधिकाधिक रूप में और अनेकानेक रूपों में अभिव्यक्ति पा रहा है। आज, कहानी-लेखक की वर्ग-दृष्टि अपेक्षाकृत स्पष्टतर है।

नई कहानी पर अराजनीतिक होने का आरोप लगाया जाता रहा है। यूं तो कुछ भी अराजनीतिक नहीं हो सकता किन्तु इस सीमित अर्थ में यह आरोप निराधार भी नहीं है कि नई कहानी ने जिस कथ्य को उठाया उसमें सामाजिक-राजनीतिक अंतर्विरोधों के लिए अधिक स्थान न था। नई कहानी की मुख्य धारा में समाज से अलगाव महसूस कर रहे व्यक्ति की मानसिकता को व्यक्त करने वाली कहानियाँ ही अधिकतर देखने को मिलती हैं। संदर्भों से कटी-जुड़ी ये अभिव्यक्तियाँ अपने निष्कर्ष में अनिवार्य रूप से किसी न किसी चेतना की (भले ही उसे मिथ्या चेतना कह लिया जाय) संवाहक हैं।

नई कहानी को कुछ वर्गीय दृष्टिकोण से देखने का प्रयास हिन्दी के आलोचकों द्वारा प्रायः न के बराबर ही किया गया है। हमारा आशय यह नहीं है कि स्वयं हमारे समीक्षकों या आलोचकों के पास वर्गीय दृष्टि का

अभाव है बल्कि इस वस्तु को गौण समझ कर इस पर ध्यान केंद्रित नहीं किया गया। इसीलिए मुझे लगा कि इस दिशा में शोध करना एक सार्थक प्रयास हो सकता है।

इस लघु शोध-प्रबंध में प्रमुख और प्रतिनिधिक कहानियों को ही समेटा है। बहुत विस्तार में जाना समय और लघु प्रबंध के आकार को देखते हुए संभव भी न था।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध को मैंने चार भागों में बांटा है। पहले भाग में पृष्ठभूमि के तौर पर वर्ग, वर्गों की उत्पत्ति और वर्ग चेतना, भारतीय समाज की वर्गीय संरचना तथा आधुनिक भारत में वर्गों की भूमिका को उद्घाटित किया है। दूसरे अध्याय में "नई कहानी की पृष्ठभूमि व प्रारंभ," "नई कहानी की प्रवृत्तियाँ," "नई कहानी में चित्रित वर्ग" शीर्षकों के अंतर्गत - विषय का विवेचन किया है। तीसरे अध्याय में नई कहानी की वर्ग चेतना की छानबीन की गयी है। अंतिम अध्याय - उपसंहार - में मैंने अपने निष्कर्षों का सार रूप दिया है।

लघु शोध-प्रबंध के कलेवर को देखते हुए कई अन्य तथ्यों का उद्घाटन संभव नहीं हो पाया है। अवांतर कहानियों और कथाकारों को इसमें शामिल नहीं किया गया। नई कहानी की मुख्य धारा के निकट जो कुछ मुझे प्रासंगिक लगा, समेटने का प्रयास ही किया गया है।

इस प्रबंध की रचना में मुझे अपने साथियों श्री श्याम कश्यप, [illegible] बहुखण्डी, मीमांसक व [illegible] की प्रेरणा और सहायता मिली है, उनका मैं हृदय से आभारी हूं। मुझे अपने शोध-निर्देशक [illegible] डा० "सुधेश" का पूर्ण मार्ग-निर्देशन प्राप्त हुआ है। मैं उनका विशेष आभारी हूं।

— यशपाल सिंह चौहान

प्रथम अध्याय

पृष्ठभूमि

(ख) वर्ग की अवधारणा

आज वर्ग शब्द प्राय: अंग्रेजी के 'क्लास' शब्द के हिंदी रूपांतर अथवा अनुवाद के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। अंग्रेजी का 'क्लास' लैटिन भाषा के 'क्लासिस' (clasis) का परिवर्तित रूप है। पुरातन काल में 'क्लासिस' शब्द हथियारबंद गिरोहों के लिए इस्तेमाल किया जाता था। इतिहास में रोमन राजा सेरविअस तुलिअस (Servias Tullius) द्वारा सिपाहियों को पांच क्लासिस (clasis) में बांटने का पता चलता है। यह राजा ईसा से 534 ई०पू० हुआ था।

आधुनिक काल तक आते-आते 'क्लास' अथवा 'वर्ग' शब्द समाज में विभाजित जनसमुदाय के बड़े हिस्सों के लिए प्रयुक्त होने लगा। आज राजनीति, साहित्य, इतिहास, राजनीतिक अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र आदि में इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया जाता है, जैसे - मजदूर वर्ग, सामंत वर्ग, जमींदार, पूंजीपति वर्ग, मध्य वर्ग, निम्न वर्ग, उच्च वर्ग और सर्वहारा वर्ग आदि-आदि।

जन समुदाय के व्यापक तबकों तथा बड़े समूहों को वर्ग कह देने मात्र से वर्ग की मूल परिकल्पना अस्पष्ट और अधूरी ही रह जाती है। प्रारम्भ से ही वर्गों के विभाजन का प्रमुख अनुशासक कारक श्रम विभाजन रहा है। आदिम कालीन समाज में श्रम विभाजन की प्रक्रिया ने ही आर्थिक असमानता को जन्म दिया।[1]

---

1 'वर्गों की उत्पत्ति समाज में श्रम विभाजन की उत्पत्ति तथा उसके विकास के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है। आदिम कबीलों के आम जन समुदायों के बीच से पशुओं को पालने वाले विशिष्ट कबीलों का जब उदय हुआ, तभी श्रम का पहला सामाजिक विभाजन हुआ था।.... इससे विनिमय के लिए तो परिस्थितियां अच्छी हुई, किन्तु लोगों की आर्थिक असमानता बढ़ गयी।'

द्वंद्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद के मूल सिद्धांत
ले - ए०स्पिरकिन तथा औ०याखोत, पृ० 178

श्रम विभाजन की यह प्रक्रिया जैसे-जैसे जटिल से जटिल होती गयी वैसे-वैसे वर्गों का विभाजन भी स्पष्ट और स्पष्टतर होता चला गया और उसके साथ-साथ आर्थिक असमानताएं भी बढ़ती गयीं ।

वर्गों के विभाजन का अनिवार्यतः आर्थिक आधार होता है । सामाजिक व्यवस्था की केन्द्रीय परिचालक शक्ति भी आर्थिक ही होती है । दूसरे शब्दों में वर्गीय विभाजन का आधार वह व्यवस्था होती है, जिसमें उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व होता है । किसी भी वर्ग की समाज में एक आर्थिक स्थिति है । व्यक्ति के संदर्भ में यह स्थिति उस व्यक्ति की वर्गीय स्थिति भी हो जाती है । यही स्थिति किसी के हितों, विचारों, नैतिक मूल्यों आदि को निर्धारित करती है । लेनिन ने वर्ग की परिभाषा इस प्रकार की है - " वर्ग जनता के बड़े समूह हैं, जिनमें सामाजिक उत्पादन की ऐतिहासिक द्वारा निर्दिष्ट किसी व्यवस्था में अपने विशिष्ट स्थान द्वारा, उत्पादन के साधनों के प्रति अपने संबंध द्वारा (यह अधिकतर मामलों में नियम द्वारा स्थिर एवं निरूपित होता है) श्रम के सामाजिक संगठनों में अपनी भूमिका द्वारा और परिणामस्वरूप, उस चीज द्वारा कि वह सामाजिक संपदा का कितना बड़ा भाग अर्जित करते हैं और किस तरह अर्जित करते हैं, एक दूसरे से भिन्नता होती है । वर्ग जनता के ऐसे समूह होते हैं जिनमें से एक-एक चीज की बदौलत कि वे सामाजिक अर्थव्यवस्था की किसी खास प्रणाली में भिन्न-भिन्न स्थान रखते हैं, दूसरों के श्रम को हड़प सकता है ।" [1]

इस प्रकार वर्ग समाज के आर्थिक ढांचे में इस प्रकार संबद्ध होते हैं कि वहां उनकी कोई भूमिका होना अनिवार्य होता है । उत्पादन के साधनों से अलग-अलग वर्गों के अलग-अलग संबंध होते हैं । सामाजिक संपदा प्राप्त करने की उनकी प्रणाली एक दूसरे से भिन्न होती है और उसी भिन्नता के आधार पर वर्गों के अलग-अलग अस्तित्व होते हैं और उनके अलग-अलग नाम होते हैं । [2]

---

1 लेनिन, संकलित रचनाएं (अंग्रेजी में), खण्ड-3, पृ० 230

2 Classes are distinguished by the different places they occupy in the system of social production, by their different relationships to the means of production and by the different methods, whereby they acquire a share of wealth ("the Ruling class" Sam Aaronovitch, pages 9)

वर्गों की उपर्युक्त परिकल्पना को व्यावहारिक रूप से देखने पर समाज में मुख्य रूप से दो वर्ग सामने आते हैं : एक शोषक वर्ग और दूसरा शोषित वर्ग, अर्थात् एक का उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व है और दूसरा उससे वंचित है। इन दोनों वर्गों के विचार, रहन-सहन, खान-पान आदि अथवा उनकी पूरी संस्कृति एक दूसरे से स्पष्टत: भिन्न होती है।

समाज में इन दोनों के अलावा दूसरे वर्ग भी होते हैं। ये वर्ग शोषक और शोषित - दोनों प्रमुख वर्गों - के बीच की सामाजिक स्थिति में रहते हैं। उदाहरणार्थ भारतीय समाज में एक ओर पर औद्योगिक मजदूर, खेत मजदूर आदि हैं, जो शोषित हैं और उत्पादन के साधनों पर रहते भी उनका स्वामित्व नहीं है, तथा दूसरी ओर पर पूंजीपति वर्ग है जो कि शोषक है। साथ ही शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में बीच की सामाजिक स्थिति वाले लोग भी हैं। ये मध्यवर्ती वर्ग के लोग (middle strata) होते हैं, जैसे सरकारी कर्मचारी, मंझोले किसान, बुद्धिजीवी और दूसरे मध्यम स्थिति वाले वेतन भोगी जन। इन वर्गों की सामाजिक उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इनके लिए अब मध्य वर्ग शब्द काफी प्रचलित हो गया है, यद्यपि वर्ग की वैज्ञानिक अवधारणा के आधार पर ये निम्नपूंजीपति वर्ग में आते हैं। उत्पादन के प्रक्रियाओं और साधनों से इन वर्गों का सीधा संबंध नहीं होता अर्थात् उत्पादन में इनकी भागीदारी सूक्ष्म किंतु अप्रत्यक्ष होती है। सुविधा की दृष्टि से इन लोगों को मध्य वर्ग कहना ही संगत होगा। यह शब्द अब इतना प्रचलित है कि इसकी सटीकता और प्रयोग को ले कर प्रश्नचिन्ह लगाना व्यर्थ होगा।

विभिन्न वर्ग समाज में अपने हितों, इच्छाओं और उद्देश्यों के अनुसार ही परिभाषित होते हैं। ऐसा स्वयंस्फूर्त रूप में होता है। इस प्रक्रिया में उनका परस्पर टकराव होता है। ऐसा अवश्यंभावी है क्यों कि विभिन्न वर्ग टकराव के बिना अस्तित्व में नहीं रह सकते किन्तु साथ उन्हें एक ही समाज में रहना भी पड़ता है। यह संघर्ष और एकता उनके अस्तित्व की अपरिहार्य शर्त है।

-----4

(ख) वर्गों की उत्पत्ति और वर्ग चेतना

वर्ग जैसे अस्तित्व में आये इस दिशा में एक वैज्ञानिक चिंतन प्रणाली मार्क्स और एंगेल्स के आविर्भाव के साथ ही सामने आयी । लेनिन की परिभाषा को यदि आधार बनाया जाय तो वर्गों के आविर्भाव को मानव के आर्थिक क्रियाकलापों के साथ जोड़ कर देखना आवश्यक है ।

इतिहास और प्रागैतिहास का वैज्ञानिक अध्ययन सिद्ध करता है कि मनुष्य सभ्य होने के साथ ही बड़े-छोटे झुंडों में रहा करता था और अपने जीवन निर्वाह के लिए सामूहिक प्रयास किया करता था । धीरे-धीरे ये झुंड साम्य संघों की एक व्यवस्था में परिवर्तित होने लगे थे । साम्य संघों के निर्माण की प्रक्रिया के साथ ही श्रम विभाजन का प्रारम्भ हो गया था । उस समय श्रम विभाजन समाज के विकास में एक सकारात्मक और प्रगतिशील कदम था । यही कारण था कि श्रम विभाजन के और अधिक स्पष्ट होते जाने से उत्पादन के रूप और प्रणाली में परिवर्तन आने प्रारंभ हो गये थे । कालान्तर में उत्पादन में वृद्धि तो हुई, किन्तु उत्पादन की प्रणाली अब नितांत सामूहिक प्रणाली नहीं रह गयी थी ।

उत्पादन की सामूहिक प्रणाली में परिवर्तन एक नये युग के आगमन का संकेत था । यह परिवर्तन पुरानी साम्य संघीय व्यवस्था के लिए मौत की घाटी था । एंगेल्स के अनुसार,"..... धीरे-धीरे श्रम का विभाजन उत्पादन की इस क्रिया में घुस आया । उसने उत्पादन और उपभोग के सामूहिक रूप की नींव खोद डाली । उसने व्यक्तिगत उपभोग को (हथिया लेने को) मुख्यतया प्रचलित नियम बना दिया और इस प्रकार व्यक्तियों के बीच श्रम का विनिमय किया ।" [1]

श्रम विभाजन की अवस्था पर पहुँच कर ही समाज में परिवर्तन तेजी से होने लगे थे । व्यक्तिगत स्वामित्व का उदय होना था कि वर्गों का अस्तित्व प्रकट होने लगा । एस०ए०तोंगी के अनुसार " इस अवस्था पर एक बार पहुँचने पर ही निजी सम्पत्ति और वर्गों की उत्पत्ति हो जाती है । वर्ग अपने को आत्म-विरोधी वर्गों में बाँट लेते हैं और गृह युद्ध अथवा वर्ग युद्ध का आरंभ हो जाता है ।" [2]

---

1 एंगेल्स, परिवार, व्यक्तिगत संपत्ति और राजसत्ता का जन्म, पृ0 243

2 एस०ए०तोंगी, "आदिम साम्यवाद से दास प्रथा तक का इतिहास" पृ0 113

इस प्रकार आदिम साम्य संघों की व्यवस्था के समापन काल में वर्गों का उदय होना शुरू हो गया था। इस व्यवस्था के पूरी तरह से ध्वस्त हो जाने के बाद मानव समाज ने गुणात्मक रूप से आगे बढ़े हुए एक नये युग में प्रवेश किया, और वह युग था " दास प्रथा का युग। दास-व्यवस्था के काल में वर्ग-विभेद एकदम स्पष्ट हो गया था। एक वर्ग दासों का था और एक वर्ग दास-स्वामियों का। वस्तुत: दास व्यवस्था की बुनियाद ही यह वर्ग-विभेद था। दास व्यवस्था से लेकर आज तक विरोधी वर्गों से युक्त व्यवस्थाएं मौजूद हैं।[1] यह अलग बात है कि वर्गों के रूप और समाज व्यवस्थाएं बदलती रही हैं किन्तु वर्ग-विभेद का लोप अभी विश्व से नहीं हो पाया।

वर्गों की उत्पत्ति ने मानव श्रम के शोषण को जन्म दिया। शोषकों और शोषितों के बीच बंटे समाज में यह अपरिहार्य है।

वर्गचेतना

किसी व्यक्ति की जो वर्गीय स्थिति होती है, वह उसके क्रियाकलापों के लिए बहुत दूर तक उत्तरदायी होती है। वह प्राय: अपनी वर्गीय सीमाओं के बाहर के मूल्यों को अपनी चेतना का अंग नहीं बना सकता। जो चीजें किसी वर्ग के व्यक्ति के आर्थिक जीवन में प्रासंगिक नहीं हैं, वे उसकी चेतना का अंग प्राय: नहीं बन सकती। इसके अपवाद हो सकते हैं, पर अपवादों से कोई सामान्य सिद्धांत नहीं निकलता। एक भारतीय मजदूर किसी बड़े होटल में जाकर पाँप संगीत का आनन्द नहीं ले सकता, क्योंकि उसकी पीड़ा भरी जिन्दगी और उस संगीत में कहीं भी कोई सम्बन्ध सूत्र नहीं जुड़ता। इसका यह आशय नहीं कि एक मजदूर संगीत मात्र का आनन्द लेने में अक्षम है। उसका अपना प्रिय संगीत हो सकता है।

वर्गचेतना का आशय किसी वर्ग के व्यक्ति की उस समग्र चेतना से है जो प्राय: उसकी वर्गीय स्थिति से अनुप्रेरित होती है, जिसमें हम उसके उन समस्त विचारों, भावनाओं एवं प्रवृत्तियों को सम्मिलित कर सकते हैं जो उसके दैनिक

---

1 "दास प्रथा के उदय के बाद से ही समाज एक दूसरे से बुनियादी तौर से भिन्न बड़े-बड़े समूहों या वर्गों में बंटता चला आया है।" द्वंद्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद के मूल सिद्धांत, ग० ए० स्पिरकिन, आ०यार०पोत, पृ० 176

----7

क्रियाकलापों, जीवनयापन के ढंगों आदि द्वारा स्वयं स्फूर्त ढंग से अभिव्यक्त होती है। वर्गचेतना को मैंने 'वर्ग चेतना' इसलिए कहा कि यह किसी एक व्यक्ति की वैयक्तिक चेतना नहीं है। प्रत्येक वर्ग का व्यक्ति अपनी वैयक्तिक अथवा विशिष्ट रुचियों, एवं भावनाओं के बावजूद कुछ समान रुचियों एवं सामूहिक भावनाओं से भी अनुप्राणित होता है जिनका सम्बन्ध व्यापक मानव-समूह [redacted] (humanity at large) से न होकर विशिष्ट मानव समूह (अर्थात् वर्ग) से अधिक होता है। विशिष्ट मानव समूहों (वर्गों) से सम्बन्धित ये समान रुचियां तथा भावनाएं ही वर्ग चेतना कहलाती हैं।

वर्ग चेतना की वर्ग संघर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि वर्ग चेतना सम्बन्धित वर्ग के लोगों में एकजुटता की भावना जगाती है और एकजुटता वर्ग संघर्ष के लिए पहली शर्त है।

(ग) प्राचीन भारतीय समाज की वर्गीय संरचना

भारत में आर्यों के आगमन का हमें ऋग्वेद से पता चलता है। 1500 ई० पू० के लगभग आर्यों ने भारत में आना प्रारम्भ किया था। ऋग्वैदिक काल में आर्यों की राज्य सत्ता कबीले के प्रमुख के हाथों में रहती थी। कबीले के प्रमुख का पद वंशानुगत होता था किन्तु इसके साथ ही दूसरे कबीलाई संगठन भी होते थे, जैसे - सभा, समिति, विदथ और गण आदि। ये संगठन कबीले के प्रमुख अर्थात् शासक राजा को राजसत्ता की देखभाल, सुरक्षा व प्रशासन कार्य में सहायता करते थे। इसमें संदेह नहीं कि प्राचीन भारत इस प्रारंभिक समाज में न्यूनाधिक रूप से जनतांत्रिक प्रणाली मौजूद थी। राजा के पास कोई नियमित स्थायी सेना नहीं होती थी मगर युद्ध के समय विभिन्न कबीलाई संगठन इसे गठित करते थे।

उस समय सामाजिक विभाजन का प्रारंभ हो गया था। भारत के मूल निवासियों पर आर्यों की विजय इस सामाजिक विभाजन का कारण थी। इन विजित लोगों को दास या वस्तु कहा जाता था और इनके साथ गुलामों का

व्यवहार किया जाता था। कबीले का प्रमुख और पुजारी लोग सम्पदा का अधिकांश हिस्सा हथियाने लगे थे - यह सामाजिक विभाजन का दूसरा प्रमुख कारण था। तत्कालीन भारत की वर्गीय संरचना में इस प्रकार का विभाजन दिखाई देने लगा था - योद्धा, पुजारी और बाकी जनगण। धीरे-धीरे ऋग्वेद काल के अंत में शूद्र सामने आने लगे थे।[1]

उत्तर ऋग्वैदिक काल क्रमशः राजसत्ता और व्यक्तिगत संपत्ति के उत्कर्ष का काल था। जनतांत्रिक तत्व तथ गण-संघ आदि का लोप होने लगा था। सार रूप में कहा जाय तो उत्तरवैदिक काल में वर्ग-विभाजन स्पष्टतर होने लगा था। उत्तर वैदिक काल में समाज चार वर्णों में पूर्ण रूप से बंट चुका था। ये वर्ण थे - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इस समय कर उगाही का और राज्य कर का प्रचलन आम और नियमित हो चुका था। इस प्रकार हम पाते हैं कि भारतीय समाज में स्पष्ट वर्गीय संरचना की जड़ें इस समय तक जम चुकी थी।

ऋग्वेद के बाद का ऐतिहासिक काल खण्ड बौद्ध धर्म के उद, मगध राज्य के आविर्भाव से शुरू होता है। बुद्ध के समय में 16 महा जनपदों के नाम से 16 राज्यों का पता चलता है। मगध साम्राज्य का आविर्भाव राजा बिम्बसार के राज्यत्व काल में हुआ था। इसके बाद नंद वंश का आविर्भाव हुआ। इस समय तक राज्य सत्ता पर व्यक्तिगत हाथों की पकड़ और निजी संपत्ति की स्थापना पूर्ण रूप से हो चुकी थी। इसका प्रमाण यह भी है कि नंदों के पास 6000 हाथी थे। राज्यों की नींव सुदृढ़ हो चुकी थी और एक प्रमुख कारण यह भी था कि राज्य संपदा के लिए भूमि करों की उगाही एक स्थायी स्रोत बन चुकी थी। उस समय भूमि आय का प्रमुख स्रोत थी।

1. The fourth division called the sudras appeared towards the end of the Rig Veda period (R. S. Sharma, Ancient India, Page 46)

इसके बाद मौर्यों का काल आया । मौर्यों के समय में प्रशासनिक व्यवस्था का विस्तार किया गया । इस काल में राजा का राज्य की समस्त आर्थिक गतिविधियों और कार्यों पर नियंत्रण था । इस प्रकार इस काल में कृषिगत आर्थिक सम्बन्ध उत्पन्न हो गये थे । इसी क्रम में अशोक का आविर्भाव हुआ और उसने बौद्ध धर्म अपना कर राज्य में उसका प्रचार करवाया । अशोक के साम्राज्य के पतन के बाद कई दूसरे वंशों के साम्राज्यों का उदय हुआ जैसे शुंग, कण्व और सातवाहन आदि । इनमें से सातवाहन अपने को ब्राह्मण कहा करते थे ।

2000 ई०पू० से भारतीय समाज की वर्गीय संरचना में एक नये वर्ग का अभ्युदय होना प्रारंभ हुआ । वह वर्ग था वणिक समुदाय । प्रारम्भ में यह एक समुदाय ही था जिसका राज्य सत्ता पर कोई अधिकार न था । इन दिनों भारत का विदेशों से व्यापार जोरों से चलने लगा था ।

लगभग ईसा की तीसरी सदी से गुप्तों का उदय हुआ । सर्वप्रथम चंद्रगुप्त प्रथम आया फिर समुद्र गुप्त और फिर चंद्रगुप्त द्वितीय और उसके बाद कुमार गुप्त । समाज में किसान और भू-स्वामी संबंधों का प्रचलन व्यवहार में आ चुका था । उसमें कोई परिवर्तन भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था ।

फिर इतिहास में हर्ष का काल आया जो ईस्वी सन् 606 से प्रारंभ होता है ।[1] इस काल में राजस्व के कई नये स्रोत सामने आ गये थे - भूमि-कर, विभिन्न उत्पादनों पर उत्पादन की विभिन्न अवस्थाओं में कर, व्यापारिक कर आदि । किन्तु राजस्व का मुख्य स्रोत अब भी भूमि कर ही था । उसी दौरान कपड़ा उद्योग भी भारत में पनपा ।

इस समय तक भारतीय समाज में कई वर्ग उपवर्ग जन्म ले चुके थे जैसे व्यापारी, दस्तकार, भूस्वामी, किसान, सैनिक, सेनाधिकारी आदि-आदि । ये सारे वर्ग-उपवर्ग मिल कर समाज की वर्गीय संरचना का निर्माण करते थे । यहीं पर प्राचीन भारतीय समाज का अवसान हुआ ।

व्यापार और नगरों का ह्रास हुआ । कृषि अर्थव्यवस्था में परिवर्तन परिलक्षित हुए । अब भूमि के आसामी (Beneficiaries) स्वयं खेती नहीं

---

1. Harsha began his reign in A.D. 606. (Romila Thapar, A history of India, Page - 143)

कर सकते थे और न ही राजस्व की उगाही कर सकते थे। किसानों और सैनिकों को खेती का काम सौंप दिया गया किन्तु वे उसके स्वामी नहीं होते थे। दस्तकारों और किसानों को अपनी जगह छोड़ने की इजाजत न थी। इसी प्रकार वर्ण व्यवस्था में परिवर्तन आया। कृषि संबंधों में परिवर्तन के चलते कई जातियां अस्तित्व में आ गयीं।

भारत में क्योंकि वर्ण व्यवस्था थी इसलिए वर्गों का गठन भी एक विशेष प्रकार से हुआ। पुजारियों, योद्धाओं, किसानों, मजदूरों आदि के कार्य कानून तय कर दिये गये थे। आम जनता को बताया जाता था कि उन्हें अपने धर्म के अनुसार कार्य करना है अर्थात् राज्यसत्ता धार्मिक ग्रंथों की विचारधारा के रूप में अपना कर अपना शोषण और राजकाज जारी रखती थी। यहीं से भारतीय सामंतवाद का प्रारंभ होता है। इसका प्रारंभ मोटे तौर पर ईस्वी सन् 800 से माना जाता है।

इस दौरान ग्राम आत्म-निर्भर अर्थव्यवस्था पर आधारित होते थे। सम्पूर्ण भूमि सामंतों के अधिकार में न होती थी। राजा स्वयं भी कुछ भूमि सीधे अपने नियंत्रण में रखता था।

इस तथ्य के तो स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि 13वीं सदी तक गंग-प्रशासन पूरी तरह से सामंतवाद में प्रवेश कर चुका था क्योंकि 1295 में कोणार्क मंदिर निर्माता द्वितीय नरसिंह देव ने अपने मंत्री कुमार महापात्र भीमदेव शर्मा को सूर्य ग्रहण के अवसर पर दो गांव अनुदान में दिये।[1] ये अनुदान मुख्य रूप से पुरोहितों और कुछ राज्याधिकारियों को भी दिये जाते थे। इससे यह स्पष्ट है कि एक नये तबके का उदय हो चुका था जो कि प्रशासन की रीढ़ था और स्पष्ट शब्दों में कहें तो सामन्तवाद का मूल आधार था।

इतिहास में सामन्तों का मुख्य कर्तव्य अपने प्रभु के प्रति निष्ठा रखना और उसकी सहायता करना बताया जाता है। निष्ठा व्यक्त करने के लिए वे अपने अनुदान पत्रों में प्रभु के नाम का उल्लेख करते थे।[2] यह सामंतवाद का उत्कर्ष

---

1 भारतीय सामंत वाद, रामशरण शर्मा, पृ0 170, राजकमल प्रकाशन, 1973 (प्र0संस्करण)

2 वही, पृ0 102

काल था। इस काल में सामंत लोग राजनीति और प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते थे। उत्तराधिकार संबंधी विवादों, संपत्ति संबंधी विवादों आदि में ये सामंत ही निर्णायक कारक होते थे। राज्याधिकारी निरंतर सामंती ढाँचे में ढलते चले गये। ये अधिकारी वेतन के रूप में भूमि-करों का एक अंश, भूमि अनुदान तथा साथ ही बड़ी-बड़ी उपाधियाँ अर्जित करते थे। प्रारंभ में (मध्यकाल के प्रारंभ में) ये अनुदान केवल पुरोहितों और मंदिरों को मिलते थे। प्रारंभिक सामंतवाद की एक विशेषता यह भी थी कि राजस्व की दृष्टि से राज्य को अनेक इकाइयों में विभक्त कर दिया गया था।

भारतीय सामंतवाद के वर्गीय ढाँचे का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू यह था कि शूद्र लोग, जिन्हें अपने से उच्च वर्गों का दास माना जाता था अब किसान बनते जा रहे थे। पुराने किसान शोषण के दुश्चक्र में फंस कर अर्ध दासत्व (Serfdom) की स्थिति में आ गये थे। किसानों के अर्ध दासत्व की स्थिति तक आ जाने के कई कारण थे, जैसे करों का भारी बोझ, बेठ-बेगार की प्रथा, अनुदान भोगियों को दिये गये अतिरिक्त अधिकार आदि। इस सामंती संरचना के बने रहने का एक प्रमुख कारण यह था कि देश की अर्थव्यवस्था विभिन्न हिस्सों में मौजूद आत्मनिर्भर आर्थिक इकाइयों पर आधारित थी।

बहरहाल, मध्यकालीन भारतीय समाज की यह वर्गीय संरचना विभिन्न अवस्थाओं में से गुजरी। प्रारंभिक काल में सामंतों को केवल उपभोगाधिकार दिये गये थे लेकिन फिर उन्हें स्वामित्वाधिकार भी मिल गया और वे और भी प्रबल हो गये। 12वीं शताब्दी तक यह प्रक्रिया अपने शिखर पर पहुंच चुकी थी।

धीरे-धीरे पश्चिमी और मध्य भारत में वाणिज्य-व्यापार का पुनरुद्धार हुआ, मुद्रा का चलन बढ़ा और विष्टि की प्रथा का विलय हुआ जिसके परिणाम-स्वरूप सामंतवाद का ह्रास होने लगा।

शताब्दी के अंत तक भारत के दक्षिणी समुद्री तटों पर व्यापारी समुदाय पनप चुका था। सर्वप्रथम पुर्तगालियों का आगमन हुआ था, फिर ब्रिटिश व फ्रांसिसी व्यापारी आये। भारतीय समाज में पूंजी की सक्रिय भूमिका के ये प्रमुख आधार थे। वणिक समुदाय ने आर्थिक सत्ता पर कब्जा करने का प्रयत्न शुरू

कर दिया । आखिरकार ब्रिटिश कंपनी, ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय अर्थ-व्यवस्था पर अपना अधिकार कर लिया था ।

भारत में पूंजीपति वर्ग का विकास 19वीं शताब्दी के मध्य से होने लगा था । ब्रिटिश पूंजीपति वर्ग के साथ भारतीय पूंजीपति वर्ग के सम्बन्ध आवयविक न थे, भारत में विदेशी पूंजी के साथ इसका तालमेल न था ।[1] इस प्रकार अपने आर्थिक हितों के लिए भी पूंजीपति वर्ग विदेशी पूंजी पर आश्रित न था । पूंजीपति वर्ग के उदय के साथ ही साथ भारत में मजदूर वर्ग का उदय भी हुआ । यह अनिवार्य भी था क्योंकि पूंजीपति वर्ग और मजदूर वर्ग का अस्तित्व एक दूसरे के लिए अनिवार्य शर्त थी ।

अंग्रेजों के शासन काल में 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में भारतीय पूंजीपति वर्ग और विदेशी पूंजी के बीच अंतर्विरोध प्रारंभ हो गये । भारतीय समाज की वर्गीय संरचना में यह नया मोड़ था । इसी क्रम में मध्य वर्ग का उदय हुआ । यह मध्य वर्ग आगे चल कर क्रांतिकारी सिद्ध हुआ तथा साम्राज्यवाद के विरुद्ध इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही ।

(घ) आजादी के बाद भारतीय समाज (वर्गीय संरचना)

राष्ट्रीय आन्दोलन के पीछे लामबंद भारतीय जनता और खास रूप में मध्यम तबके आजादी के बाद के भारत की एक भिन्न और अलग परिकल्पना ले कर चल रहे थे । श्रमिक वर्ग, क्योंकि सचेत था, उसके नेता एक वर्ग-दृष्टिकोण से इस सारे घटना-क्रम का परीक्षण कर रहे थे । अतः उसके हितों के बीच भ्रम या मोह-भंग की स्थिति पैदा नहीं हुई किंतु वे तबके जो पूंजीपति वर्ग की प्रतिनिधि

1. ~~"From the beginning it possessed one important characteristic--I~~ the main, it did not develop an organic link with British Capita lism, (Ed - D. D. Kosambi, Indian Society: historical probings, Satish Chandra's article - Indian capitalist class and imperiali before 1947, Page 392)

कांग्रेस के अनुयायी थे और उनसे भारी आशाएं लगाये बैठे थे, उनका मोह भंग हुआ और वे अचानक जैसे जमीन पर आ गिरे ।

सारी सत्ता केन्द्र ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के हाथों से निकल कर भारतीय पूंजीपतियों के हाथों में आ गये । और कांग्रेस, जो कि दूसरे चरित्र के साथ पूरे राष्ट्रीय आंदोलन का अग्र वाहक रही, अब उन्हीं की प्रवक्ता और हित-साधक पार्टी के रूप में और अधिक सक्रिय हो गयी ।

भारतीय पूंजीपति वर्ग, जो प्रथम विश्व युद्ध के दौरान अस्तित्व में आना प्रारंभ हुआ और दूसरे विश्व युद्ध के समय तक जिसने अपना प्रसार कर लिया था, अब इस स्थिति में था कि सामंतवाद के अवशेषों का काफी सीमा तक सफाया कर सके । 15 अगस्त 1947 को जब आजादी हासिल कर ली गयी, भारत में 562 रियासतें थीं । इन राज्यों के पास 48 प्रतिशत इलाका था और मात्र 25 प्रतिशत जनसंख्या । ये सब भारतीय गणराज्य के अंग बना लिये गये ।

भूस्वामी तत्वों का सफाया पूरी तरह से न हो सका । अलग रूप से विकसित ग्रामीण इलाकों में आजादी के साथ भूमि-सुधार किये गये और जमींदार वर्ग के पुराने बर्बर शोषण व दमन के तौर-तरीकों को मिटा दिया गया । किंतु देश के ग्रामीण भागों की जनता को इससे कोई भारी राहत नहीं मिली । किसानों का शोषण नये रूपों में फिर से चलने लगा । भारतीय जमींदार अपने पैंतरे बदलने लगे । इस नयी सरकार की नयी नीतियों के अनुसार उन्होंने अपने को ढालना प्रारम्भ कर दिया । दिलीप हीरो ने इस नवीन स्थिति का विवेचन इस प्रकार किया है - "As a result of land reform legislation in various states of the country since the early 1950s the class of traditional (absentee) landlords, known in India as zamindars or jagirdars has been replaced or superceded by a class of rich peasants who engage themselves directly in farm management and a large class of middle peasants." [1]

---

1. Dilip Hero, Inside India today, page 4.

---14

इस प्रकार पूंजीपति वर्ग की पार्टी, कांग्रेस के सत्ता में आने से ग्रामीण शोषित वर्गों, खेतिहर मजदूरों, छोटे व निम्न किसानों का शोषण चलता रहा, बस हुआ यह कि जमींदारी, रैयतवारी आदि प्रथाओं के खत्म होने से शोषण व दमन के आदिम व बर्बर रूपों का अंत हो गया व जमींदार आदि सामंती तत्व नये रूपों में शोषण में फिर जुट गये।

यह इसलिए भी हुआ कि भारत में राज सत्ता पूंजीपति वर्ग के हाथों में थी, जिसके स्वार्थ रूढ़ सामंती वर्ग के हितों से टकराते थे। सामंती वर्ग के पास राज सत्ता नहीं थी, अतः रूढ़ सामंती हितों की पूर्ति न होते देख ग्रामीण भू-स्वामी नये रूपों में परिवर्तित होने लगे। यद्यपि सामंती अवशेष अब भी, आजादी के 32 वर्ष बाद भी मौजूद हैं और गांवों में बर्बर दमन के तरीके आज भी देखने को मिल जाते हैं तथापि दूसरी ओर कुल लाबी धीरे-धीरे बढ़ती जा रही है और सामंती संपदा पूंजी में बदलती जा रही है। डी०डी०कोसाम्बी ने ठीक ही लिखा - "Everywhere in India, by one means or another, feudal wealth has already become or is rapidly becoming capital, either of the owner or of his creditors."[1]

इस प्रकार आजादी के बाद भारतीय ग्रामीण जनता की शोषित आबादी के किसी भी हिस्से में कोई गंभीर परिवर्तन नहीं आया है।

भारतीय शासक वर्ग की एक विशेषता यह रही कि उसने दोहरी चाल चली। आजादी के बाद उसने राष्ट्रीयकरण की बात की और केवल ऐसे ही उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया जो उद्योग ऐसे निजी स्वामित्व में थे, जिनके बस का उन्हें चलाना नहीं था। ऐसे उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करके उनके मालिकों को भारी मुआवजा दिया गया। वे उद्योग, जिनका राष्ट्रीयकरण किया गया, अधिकतर ऐसे उद्योग थे जिनमें विनियोग के खतरे में पड़ जाने का खतरा था। अतः इस प्रकार भारतीय पूंजीपति वर्ग ने बड़ी चालाकी से अपने हितों की पूर्ति की।

---

1. D. D. Kosambi, Exasperating essays, page 22

गांवों का विकास करने की दिशा में और कुछ ग्रामीण इलाकों का शहरीकरण करने की दिशा में भी कार्य किया गया किंतु यह भी निम्नपूंजीपति वर्ग और बड़े पूंजीपति वर्ग के हितों की पूर्ति के लिए ही किया गया था। गांवों के आसपास सड़कों का जाल बिछाने, बिजली आदि की सुविधाएं सुलभ होने से ग्रामीण धनिकों को और साथ ही वहां घुसपैठ करने में शहरी पूंजीपति वर्ग को भी अधिक सुविधाएं प्राप्त हुईं।

इस प्रकार आजादी के बाद पूंजीपति वर्ग के पास ही सत्ता आयी और उसने उसका प्रयोग स्वाभाविक रूप से अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए किया।

स्पष्ट है कि भारत में उत्पादन की पद्धति पूर्णतः पूंजीवादी उत्पादन-पद्धति है। "There is no apparent escape within the framwork of the bourgeois mode of production."[1]

आज सशस्त्र सेनाएं, पुलिस, प्रशासन आदि सीधे-सीधे पूंजीपति वर्ग के नियंत्रण में हैं अर्थात् राज्य सत्ता पर पूंजीपति वर्ग का अधिकार है। आजादी के बाद के औद्योगीकरण ने समाज में पूंजीपति वर्ग की जड़ों को और गहरा बना दिया है।

भारतीय पूंजीपति वर्ग ने दो महायुद्धों के अंतराल में और खासकर दूसरे महायुद्ध के बाद से अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाना प्रारंभ किया था। उस दौरान उसने भारी मुनाफे अर्जित किये थे। अपनी उस बढ़ी हुई शक्ति के बल से ही भारतीय पूंजीपति वर्ग अंग्रेज शासकों को भारत से निकालने में सफल हो सका। क्योंकि प्रत्येक पूंजीपति वर्ग चाहता है कि वह अपने इलाके पर नियंत्रण रखे, अतः यह स्वाभाविक ही था। भारतीय मजदूर वर्ग इतना शक्तिशाली और सुदृढ़ नहीं हो पाया था कि वह आजादी के बाद सत्ता में आ सके या पूंजीपति वर्ग से छीन ले सके।

भारतीय पूंजीपति वर्ग की तुलना इंगलैंड, जापान अथवा जर्मनी के पूंजीपति वर्ग से नहीं की जा सकती, क्योंकि प्रारंभ से ही भारतीय पूंजीपति वर्ग के पास विज्ञान की भारी प्रगति और तकनीकी विकास का अभाव रहा। भारतीय

---

1. D.D. Kosambi, Exasperating essays, page 27

पूंजीपति वर्ग को संकीर्ण व सीमित घरेलू बाजार ही मिला, जिसमें आबादी के भारी बहुमत की क्रय शक्ति बहुत ही कम थी। फिर भी इन सीमित बाजारों का भारतीय पूंजीपति वर्ग ने भरपूर लाभ उठाया। इसी प्रक्रिया में कांग्रेस पार्टी के शासन में औद्योगिकरण की दिशा में बढ़ने की ओर ध्यान दिया गया। अपने घरेलू बाजार को विकसित करने के लिए भारतीय पूंजीपति वर्ग ने हर संभव प्रयत्न किया।

(ङ) आधुनिक भारत : घटनाक्रम और वर्गों की भूमिका

वर्गों के साम्य संघ से कई अवस्थाओं को पार करता हुआ भारतीय समाज आज भी विरोधी वर्गों से युक्त समाज बना हुआ है। आज का भारतीय समाज विश्व पूंजीवाद की देन है। सामंती समाज-व्यवस्था से विश्व-व्यवस्थाएं पूंजीवादी समाज-व्यवस्थाओं में बदलती गयी हैं। भारतीय समाज भी, सामंती मूल्यों और रीति-नीतियों की कम या अधिक उपस्थिति के बावजूद और एक जनवादी ढांचे के बावजूद एक वर्ग-विभक्त समाज है जिसमें पूंजीपति वर्ग के पास राज्य सत्ता है।

स्वतंत्रता से पूर्व का आधुनिक भारत ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्षों का काल रहा है। भारी उथल-पुथल में से गुजरने के बाद ही भारत आज 'बड़े मकान और गंभीर परिवर्तनों के युग' में प्रवेश कर रहा है।

इसलिए रजनी पाम दत्त का यह कथन उपयुक्त है - " दुनिया के पैमाने पर देखा जाय तो आधुनिक संसार में साम्राज्यवादी प्रभुत्व का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण आधार भारत की दासता रही है।[1] भारत में अंग्रेजों का अंतिम दम तक जमे रहना भी इसी तथ्य की ओर संकेत करता है कि भारत उनके लिए मानव श्रम, संपत्ति और साधनों का अपार स्रोत था। सदियों से इस विशाल भू-खंड की संपत्ति और साधन, उनके निवासियों का जीवन और श्रम पश्चिम के पूंजीवादियों के हस्तक्षेप, आक्रमण और लूट का लक्ष्य रहे हैं...."[2]

---

1 रजनी पाम दत्त, भारत वर्तमान और भावी, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, पृ० 1
2 वही

भारत पर अपना आधिपत्य कायम करने के लिए, पुर्तगाली, डच और ब्रितानी शक्तियां पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी से ही प्रयास करती रहीं। ये परस्पर भी इस ध्येय की प्राप्ति के लिए लड़ती रहीं किंतु अंततः ब्रितानी साम्राज्यवादियों को सफलता मिली और भारत की आंतरिक कलह का फायदा उठा कर उन्होंने अपना व्यापार और तदुपरांत शासन भी भारत में जमा लिया।

अंग्रेजों ने भारत की परम्परागत अर्थ-व्यवस्था के ढांचे को तोड़ना शुरू किया। उन्होंने नयी भूमि व्यवस्थाएं लागू की और सत्ता का केंद्रीकरण किया जिससे फलस्वरूप ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विघटन हुआ और इसका प्रभाव धीरे-धीरे वर्ग संबंधों पर भी पड़ा। नयी अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिए अंग्रेजों को एक ऐसे तबके की जरूरत थी जो राज्य की रक्षा कर सके, उसे आगे बढ़ा सके। इसी से इसी के चलते " अंग्रेजी शासन ने भूमि तथा नागरिक जीवन से संबंधित नये कानून अपना कर एक ऐसे सामाजिक वर्ग को जन्म दे दिया, जिसने अंततोगत्वा उसी शक्ति का अंत कर दिया, जिसने उसे पैदा किया।" [1]

यह वर्ग था मध्यम वर्ग, जिसमें बुद्धिजीवी, वकील, अध्यापक, असैनिक कर्मचारी, व्यापारी, उद्योगपति सभी आते थे। इस व्यापक 'वर्ग' में उभरता अंकुराता हुआ भारतीय पूंजीपति वर्ग भी शामिल था।

पुरानी ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विघटन और नयी व्यवस्था व नये संपत्ति संबंधों के कारण अकेला यही वर्ग ही अस्तित्व में नहीं आया बल्कि इसके साथ ही साथ देश के श्रमजीवी वर्ग का भी अभ्युदय हुआ। उस समय इस वर्ग के अंतर्गत खेतिहर मजदूर, ग्रामीण, कारीगर, नौकर चाकर तथा संपत्तिविहीन मजदूर आते थे। यह एक ऐसा श्रमजीवी वर्ग था जो उभर चुका था किंतु संगठित नहीं हुआ था।

भारतीय मध्यम वर्ग का अस्तित्व काफी कुछ कृषि उद्योग पर आश्रित था। यह वर्ग प्रारंभ में शासन सत्ता का घोर समर्थक था क्यों कि आजीविका के लिए यह अंग्रेजी शासन सत्ता की सेवा पर निर्भर था। "यूरोपीय मध्यम वर्ग की तरह भारतीय मध्यम वर्ग भी मुनाफे की भावना से अनुप्राणित था।

भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी का युग मुख्यतः 1600 से 1858 तक माना जाता है। 1600 में उसे पहला चार्टर मिला था और 1858 में उसका राज्य

---

1 ताराचंद, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, भाग-1, पृ० 327
2 वही, पृ० 328

---18

अंतिम रूप से ब्रिटिश [redacted] सम्राट के अधीन चला गया । यहीं से भारत पर साम्राज्यवादी शासन व भारत में लगी साम्राज्यवादी आर्थिक लूट का रूप बदलना शुरू हो गया । पहले भारत में औद्योगिक पूंजी का अस्तित्व था किंतु ईस्ट इंडिया कंपनी के खत्म होने के बाद धीरे-धीरे वित्त पूंजी ने जो कि साम्राज्यवादी शासन और लूट का मुख्य आधार होती है, अपने पंजे फैलाने शुरू कर दिये ।

रजनी पाम दत्त के शब्दों में " उन्नीसवीं सदी के स्वतंत्र व्यापार पर आधारित पूंजीवाद की कुछ ऐसी आवश्यकताएं थीं, जिनसे मजबूर हो कर अंग्रेजों को भारत में अपनी नीति में कुछ परिवर्तन करने पड़े ।

एक तो इस बात की आवश्यकता थी कि कंपनी को एक बार सदा के लिए खत्म कर दिया जाय और उसकी जगह पर ब्रिटेन के पूरे पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में ब्रिटिश सरकार का सीधा शासन स्थापित कर दिया जाय । यह काम अंतिम रूप से 1858 में पूरा हुआ । " [1]

इस प्रकार सीधे-सीधे ब्रितानी पूंजीपति वर्ग के शासन ने अपनी आवश्यकतावश भारत में रेलवे का निर्माण किया, सड़क-परिवहन को विस्तृत किया तथा दूसरे तकनीकी-आर्थिक परिवर्तन ले आया जिसमें यूरोपीय ढंग की बैंक व्यवस्था प्रमुख थी । यह सब उसने मंगल कल्पना के लिए नहीं बल्कि अपने स्वार्थ के चलते किया था । इस प्रक्रिया से भारत में दोनों वर्गों - मध्यम वर्ग, जिसमें भारतीय पूंजीपत वर्ग, निम्न पूंजीपति वर्ग शामिल था, और मजदूर वर्ग के निर्माण और उदय में तेजी आयी ।

उद्योगों की स्थापना से अधिक से अधिक मजदूर वर्ग तैयार हुआ । इस मजदूर वर्ग की चेतना ग्रामीण खेतिहर मजदूर और किसान से कहीं अधिक विकसित थी क्योंकि वह उन संस्कारों और सीमाओं से अपेक्षाकृत कम बंधा था ।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना 1858 1885 में सर ह्यूम द्वारा की गयी थी, जो कि ब्रितानी साम्राज्यवाद के एक संरक्षक थे । प्रारंभ में कांग्रेस का उद्देश्य भी यही था क्योंकि ह्यूम ब्रितानी अफसरशाही तंत्र के निखारे हुए रूप थे ।

इसीलिए प्रारंभ में ही कांग्रेस पर ऐसा नेतृत्व हावी रहा, जो अंग्रेजों से प्रत्यक्ष टकराव मोल नहीं लेना चाहता था ।" उस समय कांग्रेस उच्च बुर्जुआजी, साथ सार पढ़े लिखे मध्यम वर्ग का, जो कि विचारधारणात्मक रूप से उच्च पूंजीपति वर्ग का

1 रजनी पाम दत्त, भारत वर्तमान और भावी, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, पृ0 58

प्रतिनिधित्व करता था एक संगठन थी ।"

अपनी स्थापना के 20 सालों तक कांग्रेस ने स्वराज्य के लिए कोई आधारभूत मांग तक नहीं उठायी । उनकी मांगें उच्च पदों में भारतीय को अधिक प्रतिनिधित्व दिये जाने तक ही सीमित थीं । उस समय तक नवजात मजदूर वर्ग असंगठित ही था । किसान संगठनों के निर्माण की दिशा में भी कोई काम नहीं हुआ था ।

इस बीच कांग्रेस के भीतर एक अपेक्षाकृत अधिक परिवर्तनकामी हिस्से का उदय हो चुका था । इसका नेतृत्व बाल गंगाधर तिलक, विपिन चंद्र पाल, लाला लाजपतराय आदि कर रहे थे । भारतीय इतिहास में 20वीं सदी के प्रारंभिक सालों को इसीलिए लाल-पाल-पाल के नाम से जाना गया है । ये लोग पुराने नरमपंथियों से कहीं प्रगतिशील थे । राष्ट्रवाद की उनकी अवधारणा भी भिन्न थी । यद्यपि अपने दृष्टिकोण में वे पुरातनपंथी ही थे । उनमें हिंदुत्व की भावना भी थी ।

1907 में सूरत अधिवेशन में कांग्रेस दो टुकड़ों में बंट गयी । यह विभाजन बिल्कुल स्पष्ट था । यह विभाजन कांग्रेस के अपने अंतर्विरोधों का परिणाम ही था जिसमें गोखले के नेतृत्व का नरम दल और तिलक के नेतृत्व वाला गरम दल, दो प्रमुख कारक थे । यद्यपि आगे चल कर फिर दोनों दलों में 1916 में एकता हो गयी किंतु 1918 में फिर नरमदली नेताओं ने अपना एक अलग दल - लिबरल फेडरेशन - गठित कर लिया था ।

फिर भी 1906 में कलकत्ता अधिवेशन में अपनाये गये नये कार्यक्रम और इस स्पष्ट विभाजन के चलते कांग्रेस में जागृति की एक लहर उठी । इस अधिवेशन में पहली बार स्वराज्य का अपना लक्ष्य घोषित किया गया । ब्रिटानी सरकार दहल उठी । कांग्रेस के भीतर नरमपंथियों के नेतृत्व में उठने वाला यह आंदोलन उनके अस्तित्व के लिए ही एक संकट बन गया और फिर सरकार ने बर्बर दमन बरपा कर दिया । 1908 में बालगंगाधर तिलक को 6 वर्ष की सजा हुई । इसकी प्रतिक्रियास्वरूप बम्बई के कपड़ा मजदूरों ने हड़ताल की । "यह भारत के मजदूर वर्ग की पहली राजनीति हड़ताल थी ।" 1

---

1 भारत : वर्तमान और भावी, रजनी पामदत्त, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस , पृ0 139

अंग्रेज सरकार ने जो दमन चक्र चलाया उसका अनुमान इन तथ्यों से हो सकता है," 1906 और 1909 के बीच अकेले बंगाल में 550 राजनीतिक मुकदमें चलाये गये। पुलिस बड़ी सख्ती से कार्यवाही कर रही थी। सभाएं तोड़ी जाती थीं। स्कूली बच्चों को राष्ट्रीय गान गाने पर ही पकड़ लिया जाता था।" [1]

1911 में बहिष्कार आंदोलन को कुछ सफलता मिली। सरकार ने बंग-भंग को रद्द कर दिया था। पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता की ओर बढ़ने के बीज पड़ चुके थे।" 1914 के पहले के गरमदली नेताओं ने अपने बहुत से दोषों के बावजूद एक महान एवं स्थायी कार्य कर डाला था।" [2]

इस बीच गांधी राजनीतिक मंच पर आये। प्रारंभ में उनकी भूमिका साम्राज्यवाद समर्थक रही। यह प्रथम विश्व-युद्ध का समय था। इस युद्ध में अंग्रेजों ने भारतीय संपदा, श्रम और साधन का भारी दुरुपयोग किया।

इस बीच भारतीय पूंजीपति वर्ग के एक हिस्से ने भी अपने कारखाने खोल दिये तथा भारी मुनाफा कमाना प्रारंभ कर दिया। युद्ध के समय किसी भी पूंजीपति की तरह उनकी यह भूमिका घृणित थी। किंतु इसके साथ-साथ मजदूरों की सेवा में भी वृद्धि हुई।

यहीं से भारतीय पूंजीपति वर्ग के हित साम्राज्यवाद से टकराने लगे। भारतीय पूंजीपति वर्ग अधिक अधिकार चाहता था किंतु ब्रितानी साम्राज्यवाद इस मार्ग में बाधक था।" यही अंतर्विरोध थे जिनसे युद्ध के बाद तीव्र साम्राज्यवाद-विरोधी-संघर्ष उत्पन्न हुए।"

भारतीय पूंजीपति वर्ग धीरे-धीरे विकसित होने लगा और उसमें एक परिवर्तन भी रूप धारण करने लगा था। उसका एक हिस्सा धीरे-धीरे राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग में परिवर्तित होने लगा। उसकी अपनी पहचान और अपना रूप निश्चित होने लगा।

---

1 रजनी पाम दत्त, भारत वर्तमान और भावी, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, पृ0 139

2 अयोध्या सिंह ने भी अपनी पुस्तक में इन अंतर्विरोधों की चर्चा की है। उक्त पुस्तक - पृष्ठ 22

DISS
0,152,3:9'N7
152192
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY LIBRARY
TH-312

भारतीय पूंजीपति वर्ग का एक हिस्सा राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग में रूपांतरित हो रहा था। यह एक ऐसा वर्ग था, जिसने देश में पूंजीवाद के विकास को साकार रूप दिया और जिसके हित विकास में निहित थे, क्योंकि पूंजीवादी उद्योग उसकी आय का मुख्य स्रोत बन रहा था।

युद्ध के दौरान देश की राजनीति में कई महत्वपूर्ण घटनाएं घटित हुई। 10 मई, 1913 को गदर पार्टी का निर्माण हुआ। 1914 तक अमेरिका और कनाडा से कई भारतीय लौट आये और यहां आकर उन्होंने विद्रोह करने के लिए भारतीय सेना से अपने सम्पर्क स्थापित किये। युद्ध के ही दौरान स्वतंत्र भारत की एक अस्थायी सरकार की काबुल (अफगानिस्तान) में स्थापना की गयी। इसके नेता लाला हरदयाल, बरकतुल्ला, राजा महेन्द्र प्रताप आदि थे।

इधर कांग्रेस के साम्राज्यवाद समर्थक चरित्र में परिवर्तन नजर आने लगा था। कांग्रेस हालांकि अब भी सरकार से सहयोग कर रही थी, मगर 1919 में परिस्थिति एकदम बदल गयी थी और कांग्रेस की सहयोग की नीति का आधार एकदम टूट गया था।

इसके अलावा कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में भी एकमत से नया कार्यक्रम पास किया गया। इससे पहले कांग्रेस का उद्देश्य था, उस साम्राज्यवादी ढांचे के भीतर रह कर औपनिवेशिक हुकूमत हासिल करना। अब उसका उद्देश्य हो गया, "शांतिपूर्ण तथा उचित उपायों से स्वराज्य प्राप्त करना।" गांधी जी के दिये हुए नये कार्यक्रम और नीति को अपना कर कांग्रेस ने एक बहुत बड़ा कदम उठाया था। अब कांग्रेस राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए सरकार के खिलाफ संघर्ष में जनता का नेतृत्व करने वाली राजनीतिक पार्टी बन गयी थी।

"....लेकिन इस कार्यक्रम और नीति में दूसरा तत्व भी था, जो जन संघर्ष से मेल नहीं खाता था। यह मध्यवर्गी आध्यात्मिक, नैतिक उधेड़-बुन और सुधारपंथी शांतिवाद का तत्व था, जो "अहिंसा" के बड़े निर्दोष लगने वाले शब्द के रूप में प्रकट हुआ।" [1]

कांग्रेस अपने इस बाद के चरण में उसी राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली पार्टी बन गयी थी, जिसका एक हिस्सा देश में पूंजीवाद के विकास को साकार रूप देना चाहता था।

---

1 भारत : वर्तमान और भावी, रजनी पामदत्त, पृ0 149-50

1929 के अंत में कांग्रेस का लाहौर अधिवेशन हुआ, जिसमें आंदोलन छेड़ने का निश्चय किया गया। 26 जनवरी, 1930 को देश में पहला स्वतंत्रता दिवस मनाया गया। यद्यपि आंदोलन की रणनीति अस्पष्ट थी, फिर भी जनता आंदोलन में कूदी। इसी दौरान गांधी जी ने डांडी यात्रा अभियान चलाया। किंतु सरकार ने जानबूझ कर उसके प्रचार में मदद दी। दूसरी ओर गढ़वाली सिपाहियों का विद्रोह सामने आया। इस दौरान गांधी गिरफ्तार कर लिए गये।

इसके बाद 1974 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का पटना में अधिवेशन हुआ जिसमें सत्याग्रह आंदोलन को बिना शर्त वापस लेने पर निर्णय किया गया। 1934 में ही गांधी जी ने कांग्रेस से इस्तीफा दे दिया तथा पुनः 1939-40 में खुल कर सामने आये।

राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग की पार्टी के रूप में कांग्रेस का दूसरा रूप उस समय भी उभर कर सामने आया जब जून, 1939 में कांग्रेस के कुछ नेताओं ने एक प्रस्ताव अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में रखा जिसके अनुसार कोई भी कांग्रेस नेता किसी भी किसान या दूसरे सत्याग्रह में बिना कांग्रेस कमेटी की आज्ञा के भाग नहीं ले सकता था।

फिर 1939 में फासीवादी जर्मनी ने युद्ध प्रारंभ किया। भारतीय जनता युद्ध के विरुद्ध थी। शोषण और संघर्ष के दौरान हुए दमन से वह पस्त थी और युद्ध का अर्थ था - और अधिक विनाश, और अधिक शोषण।

कांग्रेस के नेता ब्रितानी साम्राज्यवाद का समर्थन करने को इस शर्त पर तैयार थे कि वे उन्हें केंद्र में एक ऐसी सरकार का गठन करने दें जिसमें भारतीय हों तथा वे यह वायदा भी करें कि युद्ध के बाद भारत को स्वतंत्रता प्रदान कर देंगे। कांग्रेस के नेता राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के हितों से उत्प्रेरित थे। एक ओर साम्राज्यवादी ब्रिटेन का समर्थन करना चाहते थे और दूसरी ओर अपने वर्गीय हित साधन के लिए आजादी हासिल करना चाह रहे थे।

किंतु जब ब्रितानी शासकों ने एक भी कदम इस दिशा में नहीं उठाया तो कांग्रेस के नेताओं ने सत्याग्रह प्रारंभ कर दिया। उनकी बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियां की गयीं और यह सत्याग्रह यहीं समाप्त हो गया। 1941 के बारदोली अधिवेशन में कांग्रेस ने एक प्रस्ताव में घोषित किया कि वे फासीवादी ताकतों का उपस्त्र

विरोध करने के लिए तैयार है, बशर्ते भारत को अपनी राष्ट्रीय सरकार के अधीन जन-लामबंदी करने का अवसर दिया जाये। कांग्रेस के नेताओं की यह मांग उस संदर्भ में उचित भी थी क्योंकि एक केंद्रीय नेतृत्व के बिना जनता को लामबंद करना कठिन होता है।

गांधी जी ने तो जापान से संधि करने तक की वकालत की थी तथा राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता फासीवादी ताकतों के विरुद्ध मित्र राष्ट्रों की विजय पर भी प्रश्न चिन्ह लगाने लगे थे।

1942 में "भारत छोड़ो" आंदोलन छेड़ा गया। ब्रितानी शासक घोर दमन पर उतर आये। "सरकारी आंकड़ों के अनुसार 62,229 व्यक्ति गिरफ्तार किये गये और 18000 व्यक्ति भारत रक्षा अधिनियम के अंतर्गत नजरबन्द कर दिये गये। 1630 व्यक्ति घायल हुए तथा 940 मारे गये। 9 अगस्त को कांग्रेस के सभी उच्च नेता गिरफ्तार कर दिये गये।

अयोध्या सिंह के अनुसार -"जब तक कांग्रेस के नेता जेलों में रहे तब तक वे यही कहते रहे कि कांग्रेस का अगस्त आंदोलन से कोई संबंध नहीं था और यह कि यह कांग्रेस का आंदोलन नहीं था। 21 सितम्बर, 1945 को कांग्रेस की ओर से एक संयुक्त वक्तव्य में जवाहरलाल नेहरू, वल्लभ भाई पटेल और गोविंद वल्लभ पंत ने कहा कि न तो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी और न ही गांधी जी ने कोई आंदोलन शुरू किया था।"

यह अवसरवाद था जिसने पूंजीपति वर्ग के नेताओं की वास्तविकता को उद्घाटित किया।

किंतु इस बीच तनाव बढ़ता गया और अंग्रेज शासकों के लिए भारत में टिके रहना कठिन हो गया। इस बीच सुभाष चंद्र बोस की "नेशनल आर्मी" के नेताओं को लाल किले में नजरबंद कर दिया गया तथा फिर फरवरी, 1946 में एक नाविक विद्रोह घटित हुआ। इसी बीच ब्रिटेन में लेबर पार्टी की सरकार फिर सत्ता में आ गयी। भारत में बढ़ते हुए तनाव को देखते हुए केन्द्रीय और प्रांतीय चुनावों के जरिये भारतीय पार्टियों की शक्ति का परीक्षण करने के मुद्दे पर अंग्रेज शासक सहमत हो गये।

चुनाव के दो मुद्दे स्पष्ट उभर कर सामने आये । एक तो यह कि कांग्रेस सरकार के साथ भारी बहुमत है और दूसरा यह कि मुस्लिम लीग का भी मुसलमान मतदाताओं पर भारी असर है । ऐसी स्थिति में जिन्ना की दो राष्ट्रों की मांग को बल मिला । इस बीच भारत पर अंग्रेजी शासन की पकड़ ढीली होती चली गयी ।

आखिरकार भारत को दो भागों में बांटने का निर्णय लिया गया । ऐसी स्थिति में 15 अगस्त, 1947 को आजादी हासिल हुई । लार्ड माउंटबेटन भारत के पहले गवर्नर जनरल बने और कांग्रेस पार्टी पूरी तरह से सत्तासीन हो गयी ।

श्रमिक वर्ग की भूमिका :

आजादी से पहले के आधुनिक भारत में श्रमिक वर्ग की भूमिका भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि अन्य वर्गों की ।

1908 में श्रमिकों का पहला राजनीतिक उभार देखने को मिलता है । इस वर्ष लोकमान्य तिलक को छः वर्ष की सजा सुनाये जाने की प्रतिक्रियास्वरूप बम्बई के मिल मजदूरों ने एक व्यापक हड़ताल की थी ।[1]

"1914 से पहले भारत में मजदूर वर्ग की भूमिका पृष्ठभूमि में पड़ी हुई थी । मजदूर वर्ग राष्ट्रीय आंदोलन के आगे चलने के बजाय उसके पीछे-पीछे चलता था । इस जमाने में उसने केवल एक ही बड़ा राजनीतिक काम किया । यह था, तिलक महाराज को छः साल की सजा सुनाये जाने के विरोध में बम्बई की आम हड़ताल ।"

पहला विश्व युद्ध समाप्त होने के बाद भारतीय श्रमिक संगठन होने प्रारंभ हुए । "दूसरे महायुद्ध के बाद से यह बात और भी स्पष्ट हो गयी है कि भारत की राजनीति में मजदूर वर्ग ही निर्णायक शक्ति का काम करेगा ।"[2]

---

1 भारत : वर्तमान और भावी, रजनी पाम दत्त, पृ0 193

2 वही

1918-21 में जबर्दस्त हड़तालें हुईं। कई बार राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग की पार्टी कांग्रेस को भी मैदान में ला उतारने में इन्होंने मजदूर वर्ग के आंदोलनों का हाथ रहा है। राष्ट्रीय आंदोलन में मजदूर वर्ग का महत्व उसके संगठनों के मजबूत होते जाने के साथ-साथ बढ़ता गया है। मजदूर वर्ग की बढ़ती हुई शक्ति का अनुमान निम्नलिखित आंकड़ों से लग जाता है -

"1918 में बड़े औद्योगिक केंद्रों में हड़तालें होनी प्रारंभ हो गयीं। बम्बई की सूती मिलों में की गई महत्वपूर्ण हड़ताल 1919 में -" सभी मिलों से 125000 मजदूर बाहर निकल आया उसके बाद उसी वर्ष रौलट एक्ट के खिलाफ मजदूरों ने हड़ताल अभियान चलाये। 1920 में 9 से 18 जनवरी तक कलकत्ते के 35000 जूट मिलों के मजदूरों ने काम बंद रखा, 2 से 3 जनवरी तक बम्बई में आम हड़ताल रही जिसमें 2 लाख मजदूरों ने हिस्सा लिया।.... इस प्रकार "1920 में पहले छः महीनों में 200 हड़तालें हुईं और उनमें 15 लाख मजदूरों ने हिस्सा लिया।" [1]

1920 में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना हुई। 1927 तक ट्रेड यूनियन कांग्रेस में 57 यूनियनें शामिल हो गया थीं तथा इसकी कुल पंजीकृत सदस्य संख्या 150,555 थी।

ट्रेड यूनियन के झंडे के नीचे संगठित हो जाने के कारण मजदूर वर्ग में राजनीतिक चेतना का संचार अधिकाधिक होता गया। मजदूरों के बीच साम्राज्यवाद विरोध की इस चेतना से घबड़ा कर ब्रिटिश सरकार ने नये अस्त्र अपनाने प्रारंभ कर दिये। ब्रिटिश सरकार जानती थी कि "सुराजियों" और मजदूर वर्ग के क्रांतिकारी उभार से निपटना दो अलग-अलग बातें हैं।

1929 में सरकार ने भारत के मजदूर वर्ग आंदोलन के नेताओं की धर-पकड़ शुरू कर दी। एस0ए0डांगे, बिशोरी लाल घोष, पी0सी0जोशी, मुजफ्फर अहमद, शौकत उस्मानी, एस0एस0 मिरजकर और जी0एम0 अधिकारी आदि कई नेता पकड़ लिये गये और मेरठ जैसे छोटे शहर में ला कर उन पर मुकदमें चलाये गये। इसे षड्यंत्र केस के नाम से जाना जाता है।

उस वक्त भारत का मजदूर वर्ग अपने विकास की प्रारंभिक अवस्था में था। मेरठ षड्यंत्र केस के बाद फिर मजदूर वर्ग ने पूर्ण संगठित होना प्रारंभ कर दिया।

---

1 रजनी पाम दत्त, भारत : वर्तमान और भावी, पृ0 204

किंतु इस बीच अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस को ले कर कम्युनिस्टों और कांग्रेसियों के बीच मतभेद हो गया, जिससे मजदूर वर्ग के आंदोलन को अस्थायी तौर पर एक आघात लगा।

1934 में कुछ वामपंथी राष्ट्रवादी विचारधारा के युवकों ने मिल कर कांग्रेस समाजवादी पार्टी का गठन किया। किंतु इसके प्रावधान ऐसे थे कि जिनमें मजदूर आंदोलन लाजिमी तौर पर कांग्रेस के तत्कालीन नेताओं के नियंत्रण और अनुशासन के अधीन हो जाता था और "व्यवहार में इसका मतलब यह था कि मजदूर आंदोलन पूंजीपति वर्ग के आंदोलन के अधीन हो जाता था। वैसे भी मजदूर वर्ग के संघर्षों के दौरान कांग्रेस समाजवादी पार्टी की भूमिका सही नहीं रही। उस समय इसके भीतर कम्युनिस्ट भी थे अतः इसके वामपक्ष (जिसमें कम्युनिस्ट थे) और दक्षिण पक्ष (जिसमें गैर कम्युनिष्ट थे) के बीच संघर्ष चलता रहा।

समस्त अवरोधों और नेतृत्व के गुटीय संघर्षों के बावजूद 1938 तक ट्रेड यूनियन आंदोलन काफी सशक्त हो चुका था। 1938 में ट्रेड यूनियन कांग्रेस की सदस्य संख्या बाशीतीत रूप से 325,000 थी। उस समय तक मजदूर वर्ग की राजनीतिक समझ काफी साफ हो चुकी थी। मजदूर वर्ग राष्ट्रीय आजादी के लिए दल के रूप में स्वतंत्र रूप में और राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के तबकों के साथ मिल कर भी, राष्ट्रीय मांगों को ले कर साम्राज्यवाद के निरंकुश दमन का विरोध कर रहा था। अब वह साम्राज्यवाद-विरोध की शक्तियों का एक मजबूत और अंगीज अंग बन चुका था।

मजदूर वर्ग का कांग्रेस के साथ एका कर के साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ने की नीति के चलते ही यह संभव हो सका था कि प्रगतिशील कांग्रेस जनों के एक तबके ने मजदूर वर्ग विरोधी अंग, कम्युनिस्ट पार्टी पर लगी रोक को हटवाने के लिए आंदोलन चलाया था। इसके अलावा कांग्रेस की सबसे ऊंची चुनी समिति, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में 20 कम्युनिस्ट भी थे। यह मजदूर वर्ग की राजनीतिक समझ को उजागर करता है।

दूसरे महायुद्ध के बाद से भारतीय मजदूर वर्ग आंदोलन ने एक नया मोड़ लिया। सी रजनी पाम दत्त ने "मजदूर वर्ग के इतिहास में "निर्णायक अध्याय का श्रीगणेश" माना है।

1939 में जब राष्ट्रीय आंदोलन के पूंजीवादी नेता टालमटोल करने में लगे थे, उससे पहले मजदूर वर्ग ने साम्राज्यवादी युद्ध के विरुद्ध अपने स्वर को बुलंद किया। 2 अक्तूबर 1939 को साम्राज्यवादी युद्ध के विरुद्ध बम्बई के 90,000 मजदूरों ने हड़ताल की। इस साम्राज्यवादी युद्ध ने मजदूरों पर एक भारी आर्थिक बोझ थोप दिया। इसमें भारत के बड़े संपत्ति धारी वर्ग भी शामिल थे। "युद्ध के वर्षों में दसियों लाख किसानों की भूख और मजदूरों के निर्मम शोषण की कीमत पर दसियों लाख और करोड़ों रुपये बटोरे।"[1] 10 मार्च, 1940 को ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने एक हड़ताल का आह्वान किया। यह हड़ताल बम्बई के 175,000 कपड़ा मजदूरों की मंहगाई भत्ता पाने की हड़ताल के समर्थन में थी। इसके बाद पूरे देश में हड़तालों और मजदूर आंदोलनों का तांता लग गया। कानपुर में 20,000 कपड़ा मजदूरों ने हड़ताल की, कलकत्ते में 20,000 म्युनिसिपल मजदूरों ने। इस प्रकार बंगाल, बिहार, आसाम, धनबाद, करिया आदि कई राज्यों और क्षेत्रों में मजदूरों ने प्रदर्शन, धरने और हड़तालें आयोजित की। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान साम्राज्यवादियों द्वारा की गयी लूट-खसोट के विरुद्ध मजदूरों की परस्पर एकजुटता और उनकी जुझारू संघर्षशीलता का स्पष्ट रूप इन आंदोलनों में देखने को मिलता है। इस काल में कम्युनिस्ट पार्टी के और ट्रेड यूनियन कांग्रेस के नेतृत्व में मजदूर वर्ग ने दृढ़तापूर्वक साम्राज्यवादी दमन का मुकाबला किया। 1938 से 1947 के बीच मजदूरों में उभार का अनुमान निम्न-लिखित आंकड़ों से लग जाता है।

वर्ष	ट्रेड यूनियनों की संख्या	पंजीकृत सदस्यों की संख्या
1938	188	363,450
1940	195	374,256
1941	182	337,695
1942 (फरवरी)	191	369,803
1943	259	332,079

1

वर्ष	ट्रेड यूनियनों की संख्या	पंजीकृत सदस्यों की संख्या
1944	515	509,084
1947	608	726,000

उपर्युक्त आंकड़े यह स्पष्ट कर देते हैं कि साम्राज्यवादी शक्तियां जब जनता पर विभिन्न तरीकों से युद्ध थोपना चाहती थीं तो मजदूर वर्ग ने किस प्रकार उत्तरोत्तर, अपनी शक्ति में वृद्धि की और साम्राज्यवादी दाव-पातों का मुकाबला किया।

युद्ध समाप्त होने तक मजदूर वर्ग, साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ने वाला एक जुझारू, संगठित और अनुशासन-बद्ध दस्ता बन चुका था।

मजदूर आंदोलन की एक चारित्रिक विशेषता यह रही कि उसमें हिंदू, मुसलमान, ईसाई, बहुत, सब एकजुट हो गये और उनकी एकता बराबर कायम रही। दूसरी विशेषता यह थी कि यह आंदोलन मात्र साम्राज्यवाद के ही विरुद्ध लक्षित नहीं था वरन् यह पूंजीपति वर्ग के दोगलेपन और उसकी ढुलमुल प्रकृति का भी स्पष्ट विरोधी था, यद्यपि पूंजीपति वर्ग की साम्राज्यवाद विरोधी प्रकृति का मजदूर वर्ग ने समर्थन भी किया और उसके साथ संयुक्त मोर्चा बनाया।

दूसरा अध्याय

नई कहानी

- 1 -

नयी कहानी : पृष्ठभूमि और शुरुआत

आजादी से पूर्व सारी जनता राष्ट्रीय संघर्ष में संलग्न थी। समाज के सभी अंग एक बिन्दु पर पूर्णतया एकमत थे कि ब्रितानी साम्राज्यवाद को देश की धरती से उखाड़ फेंकना है, यहाँ तक कि भारतीय अमीर-उमरा भी अंग्रेजों के खिलाफ होने लगे थे। वे चाहते थे कि उनका अपना भारत हो, जहाँ वे अपने तईं परिचालित और संक्रिय हो सकें। व्यापक जनता की इस साम्राज्यवाद-विरोधी मानसिकता के चलते ही राष्ट्रीय आंदोलन अपने शिखर पर पहुँचा था। कथाकार हरिशंकर परसाई ने इसे इस प्रकार इंगित किया है, "स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले सारे समाज की आकांक्षाएं सीमित थीं और राष्ट्रीय स्वाधीनता के आंदोलन पर पूरा ध्यान केंद्रित होने के कारण, अन्य अनेक समस्याएं दब गयी थीं। विदेशी साम्राज्यवाद ने जहाँ जन साधारण के विकास के पथ को अवरुद्ध किया था, वहाँ उसने भारतीय पूंजीवाद को भी अपने स्वाभाविक रूप में विकसित नहीं होने दिया।... सरकार के प्रति असंतोष की भावना ने दोनों को एक सूत्र में बांध दिया था। आकांक्षाएं भिन्न थीं पर शत्रु एक था। राष्ट्रीयता की भावना इतनी व्यापक और तीव्र थी कि ये दोनों परस्पर-विरोधी शक्तियां भी अपने मूल द्वंद्व को भुला कर एक दूसरे का साथ दे सकीं।" [1]

इसलिए 1947 में देश को जो आजादी मिली उसे समाज के अलग-अलग वर्गों और हिस्सों ने अलग-अलग ढंग से स्वीकार या अस्वीकार किया। पूंजीपति वर्ग को अपने हितों के काफी अनुकूल सत्ता मिली। पुराने जमींदारों, सामंती तत्वों से इस नयी सत्ता का कुछ हद तक टकराव हुआ और शहरी मध्यम वित्तीय वर्गों ने जिन्हें इस आजादी से भारी आशाएं व आकांक्षाएं थीं - अपनी आकांक्षाओं को छिन्न-भिन्न होते देखा। वस्तुतः आजादी के समय तक ये मध्यम वित्तीय लोग अपनी एक पहचान बना चुके थे तथा इन्हें मध्यम वर्ग कहा जाने लगा था।

---

1 संपादक - देवीशंकर अवस्थी, नई कहानी : संदर्भ और प्रकृति, हरिशंकर परसाई का लेख - "नयी कहानी" पृ० 57

इस मध्यम वर्ग ने आज़ादी के बाद के साहित्य में प्रमुख भूमिका निभायी और यही मध्यम वर्ग कहानी का जन्मदाता भी है।

हरिशंकर परसाई के शब्दों में, "आज़ादी के बाद भारत में वह मध्य वर्ग स्थापित, विकसित और संवर्धित हुआ जो साहित्य के इतिहास में कहानी का जन्मदाता है। शुरू के तीन-चार वर्षों की संक्रमणकालीन अराजकता की स्थिति जैसे ही समाप्त हुई और संविधान निर्माण के द्वारा देश में जनतंत्र कायम हो गया, साहित्य सृष्टि के लिए एक नया वातावरण मिला।" [1]

1947 के बाद वह सूत्र, जो देश की जनवादी और पूंजीवादी शक्तियों को साथ बांधे हुये था, टूट गया, अतः उनके अंतर्विरोध मुखर हो कर सामने आ गये। यह टकराव स्वाभाविक था, क्यों कि यह उनके परस्पर-विरोधी वर्गीय हितों से जनित था। इस संघर्ष में पूंजीपति वर्ग और मज़दूर वर्ग की भूमिकाएं एकदम स्पष्ट थीं। मज़दूर वर्ग अपने शोषण और दमन के विरुद्ध खुले रूप में लड़ रहा था और पूंजीपति वर्ग दमन पर उतर आया था। आज़ादी के एकदम बाद ही मज़दूर वर्ग ने पुनप्रा-वायलार और कुछ बाद तेलंगाना की लड़ाइयां लड़ी थीं।

इस दौर में मध्यम वित्तीय लोग साफ-साफ अपनी पक्षधरता की पहचान नहीं कर पा रहे थे, वे ढुलमुल थे तथा इस दुविधा में थे कि उनकी भूमिका क्या होगी। इसी समय यूरोप से द्वितीय विश्व युद्ध के बाद का साहित्य सामने आ रहा था। युद्ध की पूरी विभीषिका से निकल कर पश्चिम यूरोपीय साहित्य का चेहरा एकदम विकृत हो गया था। आशंका, भय, अनिश्चितता, मृत्यु, मूल्यों का विघटन, पतनशील प्रवृत्तियों का उदय, जीवन के प्रति अनास्था आदि साहित्य की मुख्य धारा बन गये थे। ऐसा साम्राज्यवादी कमज़ोर देशों की पीढ़ी में स्वाभाविक ही था क्यों कि उनके आगे के सारे के सारे संदर्भ धुंधले हो गये थे और वे अपने आपको अनिश्चय व असुरक्षा की स्थिति में पा रहे थे। इसका कारण यह भी था कि वहां नैतिकता और मानवता के बुनियादी मानदंडों का उल्लंघन हुआ था।

---

1 संपादक - देवीशंकर अवस्थी, नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति
नामवर सिंह का लेख - नयी कहानी : एक और शुरूआत - पृ0 237

मूल्यों के विघटन की इस प्रक्रिया ने भारत के बुद्धिजीवी की मानसिकता पर भी प्रभाव डाला। विशेषकर, साहित्य लेखन में रत लोगों में, वर्ग-संघर्ष की स्पष्ट प्रक्रिया में किसी ओर अपने को प्रतिबद्ध न कर पाने की ढुलमुल नीयत को इससे बैठे शह मिल गयी। इस प्रकार के साहित्यकार, वस्तुत: इस स्थिति में फंस कर शोषक वर्गों के हितों की पूर्ति करने में ही संलग्न रहे। उनके लेखन का मेहनतकश व निर्धन जनता के प्रति किसी भी प्रकार का कोई उत्तरदायित्व न था। इसी बिंदु से आजादी के बाद से व्यक्तिपरक लेखन की शुरुआत हुई। किन्तु इसके साथ ही तमाम राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय घटना-क्रम ने बुद्धिजीवियों के एक वर्ग पर सकारात्मक प्रभाव भी डाला था। साहित्य में समाज परक लेखन का प्रारंभ इसी वर्ग ने किया। बुद्धिजीवी वर्ग के इन दोनों हिस्सों की मानसिकता के प्राय: उच्चमध्य वर्गीय और निम्नमध्य वर्गीय कह दिया जाता है। यह वर्गीकरण अधिक वैज्ञानिक न भी हो, तब भी यह सत्य है कि इन दोनों के वर्गीय हित एक दूसरे के विपरीत न सही, भिन्न अवश्य होते हैं। आजादी बाद के साहित्य में कहीं न कहीं यह भिन्नता और भेद प्रतिबिम्बित हुआ है। सामाजिक अंतर्विरोधों के सम्बन्ध में तो यह और भी स्पष्ट है।

हरिशंकर परसाई के अनुसार, "निम्नमध्य वर्ग के साहित्यकारों ने इस वैषम्य को, इस अंतर्विरोध को समझा और जन साधारण की आकांक्षाओं को मूर्त रूप दिया। उच्चमध्य वर्ग और उससे भी ऊपर के अन्य साहित्यकारों में से अनेक ने ह्रासोन्मुख पूंजीवाद से सहयोग किया और "व्यक्ति-स्वाधीनता" "मानवता" जैसे आकर्षक नारे लगा कर इस अंतर्विरोध को ढंके रख सेवा स्वीकार करना चाहा।" 1

बहरहाल, आजादी के बाद के अपेक्षाकृत मुक्त परिवेश में लेखन ने एक नया मोड़ लिया। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान उभर कर आये वामपंथी और जनवादी चेतना के लेखक भी अब कुछ चुकने लगे थे। उनकी रचनाधर्मिता धीरे-धीरे समय के अनुकूल अपने स्वर को प्रासंगिक न बना सकने के कारण क्षीण होने लगी थी। यह स्वाभाविक भी था। क्यों कि - कमलेश्वर के अनुसार - "जब-जब परिस्थितियां बदलती हैं, तब-तब व्यक्ति और जीवन के सारे सम्बन्धों का नया संतुलन आवश्यक हो जाता है, बदले हुए सम्बन्ध स्थापित मूल्यों के लिए संकट पैदा कर देते हैं, तब

---

1 देवीशंकर अवस्थी, नयी कहानी संदर्भ और प्रकृति, हरिशंकर परसाई का लेख, "नयी कहानी" पृ० 58

यह जरूरी हो जाता है कि इस बदलाव के दबाव और उसके पूरक शक्तियों से उत्पन्न नये मूल्यों को पहचाना जाय। पुरानी पीढ़ी के लिए हमेशा यह दिक्कत पेश आती है, क्यों कि अपने सृजनकाल में वे अपनी सहमति कुछ स्थापनाओं को दे चुके हैं और तब उनके लिए अपनी ही निर्मितियों या स्थापनाओं को तोड़ कर निकलना मुश्किल हो जाता है। कहानी के क्षेत्र में भी यही होता रहा है।" [1]

कहानी के क्षेत्र में आजादी के पहले रचनारत लेखकों के सम्मुख यही कठिनाई थी। यशपाल, जैनेन्द्र, भगवतीचरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, अज्ञेय आदि सभी के सामने अभिव्यक्ति का यही संकट मौजूद था। आजादी के पहले की उनकी चेतना इतनी स्पष्ट तो थी ही कि वे साम्राज्यवाद (ब्रितानी साम्राज्यवाद) के विरुद्ध लड़ रहे जनमानस के बीच लेखनरत हैं। इन लेखकों में से कई घोर व्यक्तिवादी रुझानों से युक्त थे (जैसे अज्ञेय, जैनेन्द्र)। ये आजादी के बाद भी उन्हीं रुझानों से ग्रस्त रहे। इसके अलावा जो जनवादी रुझान के कहानीकार थे (जैसे यशपाल आदि) वे बाद तक भी जनवादी विचारों की ही कमोबेश अभिव्यक्ति करते रहे, किन्तु इस सब के चलते हुए भी वे इसलिए अक्षम थे कि वे बदल गये वर्गीय सम्बन्धों की पहचान अभी नहीं कर पा रहे थे तथा सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह थी कि वे उसे अपने सृजन का अंग नहीं बना पा रहे थे। उनकी कहानियों के जन्म की प्रक्रिया और नये वस्तुगत घटनाक्रम के बीच कहीं तालमेल नहीं बैठ पा रहा था। इसीलिए आजादी के बाद इन आजादी के पहले लेखनरत लेखकों के लेखन में सृजनात्मक प्रयास की कमी झलकती है।

इस प्रकार जहां ये पुराने लेखक चुक जाते हैं वहीं नये कवियों व नये कहानीकारों का उदय होता है। कमलेश्वर के शब्दों में :

"... इसी समय नयी कविता का आंदोलन आता है, उसकी चेतना के अवरुद्ध स्रोतों को खोलने के लिए और लगभग उसी के आसपास नई कहानी एक गतिमान प्रक्रिया को जन्म देती है और जीवन को फैलने वाले केंद्रीय पात्रों की ओर उन्मुख होती है।" [2]

---

1 कमलेश्वर, नयी कहानी की भूमिका, पृ० 14

2 वही, पृ० 86

'आज़ादी के बाद जो नया घटनाक्रम सामने आया था वह हत्या, विघटन, भ्रष्टाचार, अमानवीय हिंसा और जीवन की विसंगतियों से भरा घटनाक्रम था। यहाँ पर कहानीकार को मध्यवर्गीय व्यक्ति के रूप में मोह भंग की स्थिति का सामना करना पड़ा। यह मोह भंग की स्थिति नयी कहानी के स्वर के रूप में प्रतिबिम्बित हुई है। इस मोह भंग की प्रक्रिया का अलग-अलग लेखकों पर अलग-अलग प्रभाव पड़ा।' यह सच भी था, किन्तु निम्नमध्यवर्गीय और उच्चमध्यवर्गीय लेखकों के बीच कोई स्पष्ट विभाजन कृत रेखा भी नहीं खींची जा सकी। मध्यवर्गीय यथार्थ का चित्रण करते समय उनके दृष्टिकोण को लेकर ही उनकी वर्गीय प्रतिबद्धताओं और आज़ादी के बाद के समाज में लेखकीय स्तर पर उनकी लड़ाई के वर्गीय स्वर का उद्घाटित किया जा सकता है।

आज़ादी के बाद कहानी में ही नहीं सम्पूर्ण साहित्य में नये जीवन मूल्यों की अनुगूँज सुनायी दी। नये उभरते पूँजीपति वर्ग ने सत्ता में आते ही अपनी स्वार्थपूर्ति प्रारंभ कर दी थी, जिससे पहले मध्य वर्ग की अपेक्षाएं भ्रमों में बदल गयीं। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान रचनारत साहित्यकार के सामने स्थिति यह नहीं थी। उसका संघर्ष साफ था, उसमें इतनी जटिलताएं भी न थीं।

नई कहानी के जन्म को ले कर यह भी कहा जाता है कि जो कुछ पुराना था वह मृत हो चुका था। निर्मल का विचार है कि, "इसलिए जब हम नई कहानी की बात करते हैं तो हमें कहानी की मृत्यु से चर्चा प्रारंभ करनी चाहिए। हमें इससे मदद मिल सकती है – कहानी को पुनर्जीवित करने के लिए नहीं – बल्कि उसे अंतिम रूप से छोड़ने के लिए।" 1

'वास्तविकता यह है कि नई कहानी ने अपनी पिछली कथा-परम्परा से काफी कुछ लिया है। यह ठीक है कि "कफ़न" "पूस की रात" आदि कहानियों को हम नई कहानियां नहीं कह सकते, किन्तु नई कहानी के बीज इन्हीं कहानियों में मिलते हैं। विशेषकर नई कहानी के जागरूक कथाकारों – अमरकांत, भीष्म साहनी, हरिशंकर परसाई, रेणु – आदि की कहानियों में प्रेमचंद और यशपाल की यथार्थवादी कथा-परम्परा के विकास को देखा जा

---

1 देवीशंकर अवस्थी, 'नयी कहानी, संदर्भ और प्रकृति,'
निर्मल का लेख "नयी कहानी लेखक के बहाने बातें" पृ० 170

कहता है। दूसरी ओर कुछ कहानीकारों ने प्रेमचंद और यशपाल तथा अन्य कहानीकारों की परम्परा से अपने आपको काट कर देखने की कोशिश की। प्रायः यह भी कहा गया कि नैतिकता की मर्यादाएं टूट रही हैं और परिवर्तनों के साथ में आदमी बौना होता जा रहा है। नैतिकता की मर्यादाओं का टूटना एक समय-सापेक्ष और निरंतर प्रक्रिया है। हर काल में कतिपय व्यक्तियों द्वारा मर्यादाओं को तोड़ा गया है। आज़ादी के पहले भी और बाद भी। किन्तु मोहन राकेश के इस कथन से स्पष्ट होता है कि नये कथाकारों ने एक सिरे से इसे केवल उपेक्षणीय और कहीं-कहीं भावुक हो कर ग्रहण करने की कोशिश की।

'इस प्रकार नई कहानी आज़ादी के बाद अस्तित्व में आई। आज़ादी के बाद अस्तित्व में आई। आज़ादी के बाद के दो-तीन वर्ष अस्त-व्यस्तता, अराजकता और उलझन के वर्ष रहे थे, जब वास्तविकताएं पूर्ण रूप ग्रहण करने की प्रक्रिया में थीं। अतः नई कहानी की शुरूआत आज़ादी के दो-तीन वर्ष बाद अर्थात् 1950 से मानी जा सकती है। नई कहानी आंदोलन की शुरूआत प्रेमचंद द्वारा अंतिम दिनों में लिखी गयी कहानियों 'कफन' और 'पूस की रात' से मानना गलत होगा। किसी भी साहित्यिक आंदोलन की पृष्ठभूमि में एक सामाजिक-आर्थिक आधार होता है और उसका जन्म भी किन्हीं विशिष्ट वस्तुगत स्थितियों, घटनाओं और दबावों से जुड़ा होता है। 'नई कहानी' उस विशिष्ट मानसिकता की उपज है, जो आज़ादी के बाद भारतीय मध्यवर्ग में घर कर गयी थी।'

अतः वास्तविकता यह है कि 'कफन' और 'पूस की रात' की नयी संवेदना से अभिभूत हो कर यह कहना कि इन कहानियों से ही 'नई कहानी' की शुरूआत होती है, गलत है। नयी कहानी की शुरूआत आज़ादी के बाद से ही मानी जाएगी। [1]

---

1 कुछ आलोचक भावना के अतिरेक में यह कह बैठे हैं कि 'कफन' से 'नई कहानी' की शुरूआत होती है, यह गलत है। 'नई कहानी' का आन्दोलन निश्चय ही सन् 50 के बाद ही अस्तित्व में आई है और अब यह मान लेना चाहिए कि उसके आगे की कहानी भी अस्तित्व में आ गयी है।'
(आलोचना, जनवरी-मार्च, [illegible] का लेख 'कहानी का अतीत और भविष्य', 1974, पृ० 28)

'नई कहानी के व्यापार नयी मानसिकता को पहले से भिन्न दृष्टिकोण से अभिव्यक्त करते हैं। यह अलग बात है कि 'नई कहानी' नाम 'नई कविता' की तर्ज पर रख दिया गया था। और कुछ-कुछ उससे यही अपेक्षाएं की गई थीं, जो नयी कविता से की गयी। नई कहानी की इस नवीनता के बारे में शिवदान सिंह चौहान का कथन है :

'..... राकेश, रेणु, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, शिव प्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, अमरकांत और कई दूसरी तरुण रचनात्मक प्रतिभाएं सामने आ चुकी थीं। उनकी कहानियों में व्यक्तिगत वैशिष्ट्य के साथ-साथ कुछ सामान्य शिल्पगत विशेषताएं भी थीं और भाषा, अभिव्यक्ति और 'एप्रोच' में भी कुछ नवीनता थी। ऐसा होना स्वाभाविक था।... दरअसल यह 'नवीनता' बदलते हुए सामाजिक परिवेश के संदर्भ में स्वाभाविक विकास प्रक्रिया का परिणाम थी....' [1]

अतः यह बात भी सही नहीं कि 'नई कहानी में नई नाम संज्ञा का अंश है विशेषण नहीं।' [2] यह संज्ञा और विशेषण दोनों ही है। यदि एक नई कहानी के ही व्यापार राजेन्द्र यादव के शब्दों का सहारा लें तो उसे इस प्रकार कहा जायेगा, 'जिसे हम नई कहानी कहते हैं वह नये युग के परिवर्तित परिवेश और अनुभूतियों का परिणाम तो है ही इस परिणाम की अभिव्यक्ति में शिल्प और शास्त्र की दृष्टि से भी उसे पुरानी कहानी से अलग कर दिया।' [3]

कहानी का नये स्वर और भंगिमा के साथ सामने आना कई और कारणों से भी संभव हो पाया। आजादी के पहले निकलने वाली 'कहानी' पत्रिका बंद हो गयी थी, 1954 में वह फिर निकलने लगी। हिंदी साहित्य के आजादी के बाद के इतिहास में 'कहानी' पत्रिका की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

---

1 शिवदान सिंह चौहान का संपादकीय, आलोचना, जुलाई, 1964, पृ० 4

2 आलोचना, परेश का लेख - 'कहानी का अतीत और वर्तमान' जनवरी-मार्च 1974, पृ० 34

3 सं० - डा० धनंजय, समकालीन कहानी, दिशा और दृष्टि, राजेन्द्र यादव का लेख 'प्रयोग की प्रक्रिया,' पृ० 69

कहानी को हिंदी में कहानी की पहली साहित्यिक पत्रिका ही नहीं बल्कि पूरी कहानी दशक की शुरुआत माना जाता है। "कहानी: नव वर्षांक" (1956) इस सम्बन्ध में ऐतिहासिक महत्व का दस्तावेज है, जिसके संपादक भैरव प्रसाद गुप्त थे। नामवर सिंह के अनुसार "कहानी : नव वर्षांक इसलिए भी उल्लेखनीय है कि पहली बार स्पष्टतः प्रश्न के रूप में नई कहानी की बात उठायी गयी।" [1] इसी दौर में निकष अंक (अर्द्ध वार्षिक) और संकेत आदि महत्वपूर्ण साहित्यिक संकलन सामने आये। इस प्रकार नई कहानी को विकसित होने का अनुकूल और उचित अवसर मिला। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं था - जैसा कि कई दूसरे आलोचक लगाते हैं कि प्रेमचंद के बाद से ले कर "नयी कहानी" के अस्तित्व में आने तक के समय को कहानी रचना के क्षेत्र में रचनात्मक गत्यावरोध का समय माना गया है। इसके अलावा इसका यह अर्थ भी नहीं लगाया जा सकता जो निर्मल वर्मा लगाते हैं, उन्होंने येट्स की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की हैं :

"अब मेरी कोई सीढ़ी शेष नहीं रही
अब मैं वहाँ लेट जाऊँगा
जहाँ से सीढ़ियाँ शुरू होती हैं
अपने दिल की उस दुर्गन्धमयी
दुकान में

इन पंक्तियों को उद्धृत करने के बाद निर्मल वर्मा कहते हैं, "नई कहानी का जन्म इसी दुकान से होगा - सिर्फ चीथड़ों और हड्डियों के सिवाय यहाँ पर कुछ भी नहीं होगा... कुछ भी नहीं मिलेगा।" [2]

वास्तविकता यह नहीं है। नई कहानी राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय स्थितियों, परिस्थितियों, साहित्य पर पड़े उसके प्रभाव के फलस्वरूप और नयी विकसित होती मध्यवर्गीय मानसिकता के चलते अस्तित्व में आयी। दरअसल चीथड़ों और

---

1 सं०- देवीशंकर अवस्थी, कहानी संदर्भ और प्रकृति, नामवर सिंह का लेख "नयी कहानी और एक शुरुआत" पृ० 334

2 सं०- देवीशंकर अवस्थी, हिंदी कहानी संदर्भ और प्रकृति, निर्मल वर्मा का लेख - नयी कहानी, लेखक के बहीखाते से - पृ० 181

लड़कियों के भरी दुकान से नई कहानी कहाँ पैदा नहीं हुई है... न जी जी सकीं और फिर थैला की ये पंक्तियां भिन्न संदर्भ की ओर लिखी गयी हैं और अपनी पीढ़ी के संदर्भ में निर्मल वर्मा द्वारा इनका प्रयोग यहाँ अध्याप-वारित लगता है।

नयी कहानी का अस्तित्व अपने समय और परिवेश के एक सही के रूप में सामने आया है - इस तथ्य को उपेक्षित नहीं किया जा सकता।

- 2 -

नई कहानी : मुख्य प्रवृत्तियाँ

नई कहानी को प्राय: प्रवृत्तिमूलक कहा जाता है। "प्रवृत्तिमूलक होने के कारण हिंदी कहानी को 'नई कहानी' कहा जाता है।" [1]

नई कहानी को उसके कथ्य और शिल्प के आधार पर प्राय: पिछली कहानियों से अलग किया जाता है या दूसरे शब्दों में कथ्य के चुनाव की उसकी दृष्टि पिछली कहानियों से गुणात्मक रूप से भिन्नतर मानी जाती है।

इस सम्बन्ध में प्राय: अनुभव की प्रामाणिकता की बात की जाती है। नये कहानीकार प्रत्येक यथार्थ को कहानी का कथ्य बनाने के हामी नहीं हैं। उनके अनुसार जो "सार्थक" है वही नई कहानी में कहानी का कथ्य बन पाया है। सार्थक के चुनाव को अनुभव की और दूसरे शब्दों में "कहानी की प्रामाणिकता कहा गया है।" कमलेश्वर ने इसी संदर्भ में नई कहानी की विभिन्न धाराओं अथवा प्रवृत्तियों को इस प्रकार सामने रखा है :

"जहाँ इसे व्यंग्य के रूप में देखना है, वहाँ अमरकांत, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, कृष्ण बलदेव वैद और मनोहर श्याम जोशी की कहानियों में यह मौजूद है। गहरी उदासीनता का कोण रामकुमार, निर्मल वर्मा और कृष्णा सोबती में उपस्थित है। गहन यथार्थवादी अभिव्यक्ति के लिए मोहन राकेश, मन्नू भंडारी और धर्मवीर भारती की कहानियाँ हैं। लोक कथा की सहजता के लिए फणीश्वरनाथ रेणु, शिव प्रसाद सिंह, केशव प्रसाद मिश्र और मार्कंडेय की रचनाएँ हैं। जटिल तकनीकी प्रयोग के लिए राजेंद्र यादव, रमेश बक्षी और वैद की कहानियाँ हैं। सपाट कथन के लिए अमरकांत और शानी की कृतियाँ हैं।" [2]

---

1 डॉ० देवीशंकर अवस्थी, नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति,
हृषीकेश का लेख - आज की हिंदी कहानी : नई प्रवृत्तियाँ, पृ० 74

2 कमलेश्वर, नई कहानी की भूमिका, पृ० 139

वस्तुत: ये नई कहानी की वे धाराएं हैं जिनसे होकर उसने नये और गंभीरतर अर्थ ग्रहण किये हैं। किन्तु समग्रता में देखा जाय तो नये कहानीकारों में परस्पर-विरोधी लगने वाली प्रवृत्तियां मिलती हैं। उदाहरण के लिए हरिशंकर परसाई और अमरकांत के यथार्थ-बोध व निर्मल वर्मा, राजेंद्र यादव मन्नू भण्डारी व उस दौर की कमलेश्वर की कहानियों के यथार्थ-बोध में भारी भिन्नता है। दरअसल यह भिन्नता मात्र उनकी शैली के कारण ही सामने नहीं आई है, बल्कि इसके पीछे एक सतत वैचारिक पृष्ठभूमि है, कथाकारों की वर्गीय समझदारी है। इसी पृष्ठभूमि और समझदारी से अनभिज्ञता के कारण एक आलोचक ने ठीक ही कहा है (जो कि निश्चय ही अतिवादिता है) कि "नई कहानी में इतनी विविधता है कि कला संबंधी कोई निश्चित मानदंड नहीं स्थापित किया जा सकता।"[1]

नई कहानी में जहां यथार्थ को अमूर्त बनाने की प्रवृत्ति विद्यमान है वहां यथार्थ को और ठोस शक्ल देने की प्रवृत्ति भी दिखायी देती है। यह प्रवृत्ति इस कारण से है कि नई कहानी आंदोलन में निम्नमध्यवर्गीय मानसिकता वाले कथाकार भी हैं और उच्चमध्यवर्गीय अथवा निम्नपूंजीपति वर्गीय समझदारी से युक्त कथाकार भी। एक मूर्तता और अपेक्षाकृत ठोस जीवन की ओर ले जाता है तो दूसरा अमूर्तता और भाववाद की ओर। एक तरफ हमें वे कहानियां देखने को मिलती हैं, जिनमें जीवन के अंतर्विरोधों को बड़े व्यंग्यात्मक और पैने ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। ये कहानियां जीवन के यथार्थ को ठोस शक्ल देती हैं। राजेंद्र यादव की "जहां लक्ष्मी कैद है," अमरकांत की "दोपहर का भोजन" और "डिप्टी कलक्टरी," हरिशंकर परसाई की "भोलाराम का जीव" तथा भीष्म साहनी की "चीफ की दावत" ऐसी ही कहानियां हैं। इन कहानियों का आधारभूत स्वर सामाजिक है। इन्हें सामाजिक यथार्थ की कहानियां भी कहा जा सकता है। दूसरी ओर वे कहानियां हैं, जिनमें जीवन के चित्रण को वैयक्तिक स्तर पर ग्रहण किया गया है। इन कहानियों में कहीं कोई अमूर्त मनोवैज्ञानिक सत्य उभरता है तो कहीं-कहीं कोई अस्तित्ववादी स्वर मुखरित हुआ है। उदाहरण के लिए - छोटे-छोटे

---

1 सुरेश सिन्हा, हिंदी कहानी : उद्भव और विकास, पृ0 557

लाजवन्ती (राजेन्द्र यादव), मेरा दुश्मन (कृष्ण बलदेव वैद), परिंदे (निर्मल वर्मा) आदि।

नई कहानी में परिवेश के प्रति एक गहन लगाव की प्रवृत्ति प्राय: मिलती है। क्योंकि सभी कहानीकार परिवेश के प्रति सजग दिखायी देते हैं। "डिप्टी कलक्टरी" जैसी और व्यक्तिपरक लगने वाली कहानियों में भी सामाजिक परिवेश मौजूद रहता है। कहीं यह परिवेश पृष्ठभूमि के तौर पर कहानी पर छाया होता है तो कहीं कहानी सीधे-सीधे परिवेश से बन्धी होती है। परिवेश के प्रति अलग-अलग दृष्टिकोण अपनाने के कारण कहानीकारों की अभिव्यक्तियाँ अलग-अलग हो गयी हैं। उदाहरणार्थ "जानवर और जानवर" में मोहन राकेश व्यंग्यात्मक रूप से उसी परिवेश को उठाते हैं, जिस परिवेश को निर्मल वर्मा "परिंदे" में। दोनों ही कहानियाँ कान्वेंट स्कूलों के हास्टलों में अध्यापक-अध्यापिकाओं के परिवेश को ले कर चलते हैं। किन्तु इसके बावजूद दोनों की अंतर्वस्तु भिन्न है। राकेश की कहानी "जानवर और जानवर" भ्रष्ट और बेईमान पादरी तथा ईसाई अधिकारियों के विरुद्ध क्रोध की भावना जगाती है और निर्मल वर्मा की कहानी कहीं भी उस परिवेश के अमानवीय रूप को सामने नहीं लाती परन्तु उसके प्रति पाठक को एक रोमांटिक ढंग से सोचने को और उन्मुख करती है। इसी प्रकार की नयी कहानियों में अभिजात मानसिकता की अभिव्यक्ति मिलती है।

इस प्रकार नई कहानी में परिवेश-बोध, चाहे वह जिस रूप में और जिस किसी भी कोण से अभिव्यक्त हुआ हो, एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति बन कर उभरा है।[1]

आंचलिकता की प्रवृत्ति नई कहानी की एक विशिष्ट उपलब्धि मानी गयी है। यह प्रवृत्ति भी नयी कहानी के लगभग सभी कहानीकारों में किसी रूप में मिलती है। उदाहरण के लिए रमेश बक्षी की कहानी "[illegible]" में "चाची," "बाबा की मम्मी" और पिताजी के माध्यम से जिन

---

1 आज की कहानियों में परिवेश-बोध की अनुपातता की विशिष्ट पहचान बहुत महत्व की वस्तु है। इसकी सही पकड़ न होने से भ्रांतियाँ हो जाती हैं। (लहर, जुलाई, 1961, नित्यानंद तिवारी का लेख - हिंदी कहानी की दिशा - 1)

तीन सामाजिक स्तरों (उच्च, मध्य और निम्न) के रहन-सहन और उनके जीवन मूल्यों की ओर इंगित किया गया है वे इस कहानी की संकेतधर्मिता द्वारा ही सामने आ पाते हैं। कहीं-कहीं नई कहानी में यह सांकेतिकता और अधिक जटिलता की ओर भी ले जाती है। कृष्णा बलदेव वैद की कई कहानियां इसी कोटि में आती हैं। यद्यपि नये कथाकारों की ओर से सुरेन्द्र वर्मा इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार से देते हैं : "नयी कहानी में संकेत का सविशेषण होना इस कारण से भी चालित है कि नये कथाकार को "आदेश" देने, लेखक की हैसियत से "सीधे बात" करने, कथा में अतिरिक्त "नाटकीयता का आयोजन" करने की सुविधाएं प्राप्त नहीं हैं। पुराने कथाकार को यह सुविधाएं प्राप्त थीं। असल में इन सुविधाओं का इस्तेमाल "नया कहानीकार" करना भी नहीं चाहता...." [1]

'नई कहानियों की प्रवृत्तिगत जांच-पड़ताल के दौरान एक और विचार बिंदु उभरता है, वह है - मूड और मन: स्थिति का चित्रण। निर्मल वर्मा की अधिकांश कहानियां मूड और मन:स्थिति की आदर्श कहानियां हैं। नई कहानी में यह प्रवृत्ति प्रत्येक कथाकार में नहीं मिलती किन्तु निर्मल वर्मा की कहानियां इसी रंग में रंगी हैं। "परिन्दे" इसका एक सटीक उदाहरण है।' लतिका और उसी की तरह अभिशप्त अन्य पात्रों - डा०मुकर्जी और ह्यूबर्ट के अंतर्मन की स्थितियों, भावों और गहन उदासी की भावना को इस कहानी में उजागर किया गया है। उसी तरह उनकी एक अन्य कहानी है "डायरी का खेल"। "डायरी का खेल" की बिट्टो भी लतिका की तरह गहन उदासी का भाव असम्पृक्त रूप से पाठकों पर छोड़ती चलती है। यह कहानी मन:स्थिति के विभिन्न कोणों को सामने रखती है। उदाहरणार्थ बिट्टो का यह आत्मकथन "जब मैं बहुत छोटी थी तो रात को छत पर सोने से पहले अपने लिए सुन्दर नन्हा सा तारा चुन लेती थी... लेकिन अगली रात बहुत खोजने पर वह तारा नहीं मिलता था ...." [2]

---

1 सुरेन्द्र वर्मा, नयी कहानी : दशा-दिशा, संभावना, पृ० 360

2 निर्मल वर्मा, परिन्दे, पृ० 20

मूड और मन:स्थिति के गहन उदासी से भरे चित्र रामकुमार की कहानियों में भी मिलते हैं। उनकी कहानी "समुद्र" में एक प्रौढ़ दम्पति उम्र गुजर जाने के बाद समुद्र के किनारे हनीमून मनाने के लिए जाता है। उनके बच्चे घर पर हैं और वे, खास कर पत्नी पूरे माहौल में बड़ी असुविधा अनुभव करती है। उसे सब कुछ असंगत-सा लगने लगता है। "उस रात बहुत देर तक उसे नींद न आ सकी। अच्छा हुआ कि चुपचाप कमरे से बाहर निकल कर घूम आये परन्तु अकेले रात में घूमने का साहस न हुआ। अपने प्रति न जाने कैसी घृणा सी मन में उभरने लगी।" [1]

'नयी कहानी में प्रतीकों का प्रयोग भी सहज रूप में हुआ है। प्रतीकात्मकता इसलिए भी नई कहानी में उभर कर आई है क्यों कि उसमें सांकेतिकता का बाहुल्य रहा है। कुछ कहानियाँ में व्यक्ति समाज का प्रतीक बन गये हैं, वे किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। अमरकांत की कहानी का रजुवा मात्र व्यक्ति नहीं है, वह उस मानवीय त्रासदी का प्रतीक है, जिसे हमारे अद्यतन विकसित विश्व में भी मानवता भोग रही है। वहाँ रजुवा एक व्यक्ति चरित्र होते हुए भी एक प्रतीक है।'

यह प्रतीकात्मकता कहीं-कहीं बेहद गुम्फित रूप में सामने आयी है। उदाहरण के लिए कृष्ण बलदेव वैद की कहानी "मेरा दुश्मन" का "वह" कहानी के मैं का ही एक दूसरा रूप है। इस कहानी में प्रतीक इतने स्पष्ट रूप में सामने नहीं आ पाता।

इसी प्रकार राजेन्द्र यादव की कहानी "खेल खिलौने" में बुद्ध की मूर्ति से बच्चे के खेलने का जिक्र बार-बार आता है। बुद्ध की मूर्ति का टूटना एक प्रक्रिया के रूप में अत्यंत सटीक रूप से प्रतीकात्मक है और यह स्पष्ट करता है कि कैसे आज के समाज में लड़की को खिलौने की तरह लिया जाता है, उसके प्रति अमानवीय दृष्टिकोण बरता जाता है।

रामकुमार की कहानी "सेलर" का "मैं" पार्क में जिस लड़के से मिलता है वह लड़का जीवंत इच्छाओं और आकांक्षाओं का एक पुंज है। यह लड़का भिन्न स्तर पर एक आदर्श और सहज स्वाभाविक इच्छा का प्रतीक है।

---

1 रामकुमार, समुद्र, पृ० 121

नई कहानी में अलगाव की चेतना उभर कर आई है। यह कुंठा, अकेलापन, अजनबीपन, [redacted] ऊब और अस्तित्व के संकट के रूप में सामने आती है।

'खोयी हुई दिशाएं' (कमलेश्वर) में इस अकेलेपन और अजनबीपन की यह अभिव्यक्ति चंदर जैसे पात्रों के माध्यम से नई कहानी में अभिव्यक्त हुई है। चंदर अकेला, खोया हुआ चरित्र है, जो अपने परिवेश में ही कर भी उससे अलगाव महसूस करता है। उसकी मनःस्थिति इस प्रकार है : 'पूरा दिन बर्बाद हो गया, यहीं खड़ा सोच रहा था, घर लौटने को भी मन नहीं कर रहा था। आती-जाती एक-सी औरतों को देख कर मन और भी ऊबने लगता था।'[1] 'खोयी हुई दिशाएं' का यह नायक कहानी के अंत में रात को अपनी सोयी हुई पत्नी को झिंझोड़ कर जगाता है, उससे डरी हुई आवाज में पूछता है, 'मुझे पहचानती हो? मुझे पहचानती हो निर्मला।'[2] स्पष्टतः यहां पर कहानी का 'मैं' अपनी 'पहचान' की तलाश कर रहा है, अपने को असुरक्षित और बेहद अजनबी महसूस कर रहा है।

नई कहानी की एक अन्य प्रवृत्ति है - केंद्रीय पात्रों का रूपायन। इसे प्रायः यथार्थ की तलाश से जोड़ा जाता है।[3] नई कहानी में प्रायः एक व्यक्ति कथा के समस्त व्यापारों का केंद्र है। समस्त स्थितियां, परिस्थितियां व घटनाएं उसी पर आश्रित होती हैं।[4] नई कहानी में जिस यथार्थ को अभिव्यक्ति मिली है वह अधिकतर कहानियों में व्यक्तिकेंद्रित यथार्थ है, उसके अंतर्गत कुछ सामाजिक यथार्थ की कहानियां भी आ जाती हैं, जैसे - 'जिंदगी और जोंक'।

नयी कहानी में यह व्यक्ति केंद्रित जीवन व्यक्तिवाद और भावुकता की ओर भी ले जाता है। यद्यपि एक नये कथाकार का कहना है कि,

---

1 डॉ0- राजेंद्र यादव, एक दुनिया समानांतर, पृ0 84

2 वही, पृ0 138

3 'केंद्रीय पात्रों का यह रूपायन वास्तव में पात्रों की तलाश नहीं थी, बल्कि यथार्थ की तलाश थी, जिसमें जी रहे पात्रों के माध्यम से अस्तित्व की स्थितियों को अभिव्यक्ति मिली है। (कमलेश्वर, नई कहानी की भूमिका, पृ0 65)

4 वही, पृ0 77

"नयी कहानी भावुकता की नहीं .... विवेचनशीलता की कहानी है। उसका व्यक्ति सैंटिमैंटल नहीं सैंस्टिव है।" किन्तु सभी कहानियों के बारे में वास्तविकता यह नहीं है। निर्मल वर्मा की कहानियों के केंद्रीय पात्र अधिकांशी भावुकता से ग्रस्त और व्यक्ति केंद्रित पात्र हैं। उदाहरणार्थ उनकी कहानी "जैसे मैं" की पानी और कहानी का केंद्रीय पात्र "मैं" एक किशोर भावुकता से ग्रस्त है और लेखक की दृष्टि कहीं भी उसके प्रति वस्तुगत नहीं है।

नई कहानी की एक और प्रमुख प्रवृत्ति है - आंचलिकता। यह प्रवृत्ति इतनी प्रमुख है कि प्राय: नई कहानी का विवेचन करते समय नई कहानी को दो भागों में बांट कर देखा जाता है - शहरी जीवन की कहानियां और ग्रामीण जीवन की कहानियां।

फणीश्वरनाथ रेणु, शैलेष मटियानी, मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह आदि का नाम आंचलिक कहानी के संदर्भ में लिया जाता है। आंचलिक कहानी से यहां तात्पर्य है, ऐसी कहानियां जो अंचल विशेष के जीवन को ही अपना विषय बनाती है। यहां पर "अंचल" विशेष के अंतर्गत शहरी अंचलों को नहीं लिया जाता, यह ग्रामीण अंचलों के लिए रूढ़ हो गया है।

आंचलिक कथाकारों में अलग-अलग कथाकारों ने अलग-अलग अंचल विशेष को उठाया है। उदाहरणार्थ रेणु ने बिहार के ग्रामीण अंचलोंको, शैलेष मटियानी ने कुमाऊं के पहाड़ी जीवन को। वस्तुत: देखा जाय तो इन कथाकारों ने प्रेमचंद की ग्रामीण यथार्थ के चित्रण की स्वस्थ परम्परा को आगे बढ़ाया है।

नई कहानी की इस प्रवृत्ति ने नई कहानी को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया है। ठुमरी, तीसरी कसम, लाल पान की बेगम (रेणु) कर्मनाशा की हार (शिव प्रसाद सिंह), हंसा जाइ अकेला (मार्कण्डेय) जैसी नई कहानी की प्रतिनिधि कहानियां आंचलिक कहानियों के रूप में गिनी जाती हैं।

नई कहानी में आधुनिकता की प्रवृत्ति को लेकर भी इधर काफी चर्चा हुई है। नई कहानियों में आधुनिकता-बोध ढूंढने की कोशिश की जाती रही है। किन्तु नई कहानी में आधुनिकता को उस रूप में नहीं लिया जा सकता कि यह पश्चिम की देन है या कि यह पश्चिम के नव-स्वच्छंदवाद और नव यथार्थवाद

की देन है। इसका कारण यह है कि नई कहानियों में जहां भी कहीं कहीं में आधुनिकता के दर्शन होते हैं, वहां वह ठोस सामयिक संदर्भों और जीवंत कथा-स्थितियों से उभरती है। उदाहरणार्थ, अमरकांत की कहानी 'जिंदगी और जोंक,' शेखर जोशी की कहानी 'बदबू,' राजेंद्र यादव की कहानी 'टूटना,' रामकुमार की कहानी 'सेलर' जीवन को उसके बदलते संदर्भों में अंतर्विरोधों के साथ चित्रित करती है और इसी अर्थ में ये सारी कहानियां आधुनिकता से युक्त भी हैं। अस्तित्ववाद से प्रभावित होने और मरणशील मूल्यों का राग अलापने को आधुनिकता नहीं कहा जा सकता। आत्मकेंद्रित कथ्य वाली कहानियों को आधुनिकता की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

इस प्रकार आधुनिकता नई कहानी में एक प्रक्रिया के रूप में आई है। स्पष्ट है कि नई कहानी का आधुनिकतावाद आजादी के बाद के भारतीय सामान्य जन के जीवन के चित्रण के रूप में सामने आया है खास कर शहरी जीवन के चित्रण के रूप में।

'नई कहानी में बदले हुए रूपबंध और शिल्प का दर्शन होता है। पिछली कहानियों से कथ्य के भिन्नतर हो जाने के कारण ही ऐसा हुआ है। नयी भाव भंगिमा और नयी अंतर्वस्तु की अभिव्यक्ति के लिए नये शिल्प का प्रयोग उसके लिए सहज ही था। वास्तव में अभिव्यक्ति और जटिल हो गयी थी। कहानी विधा ने अन्य विधाओं से भी काफी कुछ ग्रहण किया। श्री सुरेन्द्र के अनुसार 'नई कहानी' ने गद्य की दूसरी विधाओं को इस कदर आत्मसात किया है कि रेखाचित्र रिपोर्ताज, संस्मरण, यात्रा-विवरण, यहां तक कि निबंध भी उसकी परिभाषा से इतना कम दूर रह गया है कि कहानी की प्रचलित सच्ची परिभाषा ही बदल गयी है....' 1'

'नई कहानी की शिल्पगत प्रवृत्ति के अंतर्गत कथानक का नयापन विशेष उल्लेखनीय है। नई कहानी में प्रेमचंदीय इतिवृत्तात्मक और घटनाबहुलता नहीं है। कई कहानियां ऐसी भी हैं जैसे - किनारे से किनारे तक, छोटे-छोटे ताजमहल, (राजेन्द्र यादव) खोयी हुई दिशाएं (कमलेश्वर), सेलर (रामकुमार) आदि, जिनमें कथानक नाम मात्र के लिए ही है। ऐसा इसलिए नहीं है कि इस प्रकार की सारी

---

1 श्री सुरेन्द्र, नई कहानी : प्रकृति और पाठ, पृ० 68

कहानियाँ स्वाधीन होती हैं बल्कि इसलिए है कि नये कहानीकारों को लगा कि उन्हें कथानकों और घटनाओं से भरी कहानियों की रचना उनके अनुभव के अनुकूल न होगी।'

'नई कहानी के नये शिल्प के साथ जुड़ी हुई एक दूसरी महत्त्वपूर्ण बात थी - भाषा। नई कहानी में भाषा के विविधतापूर्ण प्रयोग मिलते हैं। फणीश्वरनाथ रेणु की भाषा में बिहारी भाषाओं के ग्रामीण शब्दों की भरमार है, निर्मल वर्मा की भाषा लालित्यपूर्ण और सूक्ष्म है, मार्कण्डेय की भाषा में जटिलता है, अमरकांत की भाषा सीधी-सादी और स्पष्ट है। ऐसा इसलिए है क्योंकि इन अलग-अलग कथाकारों ने जीवन के अलग-अलग पहलुओं पर जोर दिया है।'

'शिल्प के संबंध में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि नई कहानियाँ पहले से निर्धारित और निश्चित लकीरों पर चलती हैं। इन कहानियों में भाषा, कथोपकथन, शैली, सब कुछ सायास लाया जाता है।' रमेश बक्षी की कहानी 'ये कहे : ये माएँ' में तीन बच्चों की माँओं और बच्चों को छाँट-छाँट कर लाया गया है और एक स्थान पर इकट्ठा किया गया है। राजेन्द्र यादव जानबूझ कर अपनी कहानी 'एक कमजोर लड़की की कहानी' को पीड़ा देने वाले ढंग से व्याख्या करते हैं। 'सुखांत कहानी के पाठकों के लिए मेरी यह कहानी समाप्त हो गई है और वे यहीं से संतोष कर सकते हैं। सुखांत कहानियाँ पसंद करने वाले नीचे की पंक्तियाँ छोड़ दें।' [1] इसके बाद उन्होंने कहानी को और आगे घसीटा है, जो कृत्रिम और अस्वाभाविक लगता है।

कई बार ऐसा भी हुआ है कि अमूर्त शिल्प का प्रयोग करके कहानी की कथावस्तु की विपन्नता को भी छुपाने की कोशिश की गई है। जैसे राजेन्द्र यादव की कहानी 'छोटे-छोटे ताजमहल' में। अतः कमलेश्वर का निम्न कथन पूर्णतः सच नहीं है कि, '... नई कहानी में चूंकि अनुभव और उसकी संश्लिष्ट (विजन) ही मुख्य है, अतः शिल्प और शैली उसी से उद्भूत होती है।' [2]

---

1 राजेन्द्र यादव, जहाँ लक्ष्मी कैद है, पृ० 73

2 कमलेश्वर, नई कहानी की भूमिका, पृ० 142

सार रूप में यही कहा जायगा कि नई कहानी की अधिकांश कहानियों का शिल्प नये प्रयोग की माँग ज़रूर करता है किन्तु कहीं-कहीं वह सायास भी है और जहाँ-जहाँ वह सायास है वहाँ-वहाँ कहानी की आत्मा मर जाती है।

- 3 -

नई कहानी में चित्रित वर्ग

मोटे तौर पर नई कहानी को आजादी के बाद की मध्यवर्गीय मानसिकता की अभिव्यक्ति कहा जा सकता है। नई कहानी में अधिकांशत: मध्य वर्ग का चित्रण ही मिलता है। नई कहानी में व्यापक स्तर पर मध्य वर्गीय जीवन की विडम्बनाओं, उसके कुण्ठित परिवेश और उसकी इच्छाओं आकांक्षाओं तथा समाज की विकृतियों की सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है। अनेक कहानियां ऐसी भी हैं जिनमें निम्न वर्ग का चित्रण भी किया गया है पर अधिकांश कहानियों में मध्यवर्गीय परिवेश और यथार्थ को ही कथ्य बनाया गया है। इसी को नई कहानी की प्रधान चेतना के रूप में रेखांकित किया जा सकता है। इसीलिए ऊपर हमने नई कहानी को आजादी के बाद की मध्यवर्गीय मानसिकता की अभिव्यक्ति कहा है।

निम्नवर्गीय यथार्थ का चित्रण जिन कहानियों में हुआ है वे प्राय: ग्रामीण परिवेश की हैं या लिखी गयी हैं, यद्यपि निम्न वर्ग के लोग छोटे कस्बों और बड़े शहरों की गंदी बस्तियों में भी रहते हैं। 'नगरीय जीवन की कहानियां' और 'ग्रामीण जीवन की कहानियां' इस प्रकार के विभाजन के पीछे यही धारणा दिखायी देती है कि नगरीय जीवन की कहानियों का संबंध मध्य वर्ग से है और ग्रामीण जीवन की कहानियों का संबंध निम्न वर्ग से है। पर कहानियों का उक्त विभाजन बहुत तर्क संगत नहीं है।

नई कहानी में चित्रित वर्ग का विवेचन हम नीचे की पंक्तियों में 'निम्न वर्ग' और 'मध्यम वर्ग' शीर्षकों के अंतर्गत करेंगे। उच्च मध्य वर्ग और निम्न मध्य वर्ग वस्तुत: मध्य वर्ग के ही दो स्तर हैं। यह विभाजन पूर्णतया समाजशास्त्रीय है। देखा जाय तो निम्न वर्ग के अंतर्गत मजदूर, गांव के गरीब किसान आदि आते हैं जबकि मध्य वर्ग के अंतर्गत बाबू, छोटे दुकानदार, प्राध्यापक आदि।

(क) निम्नवर्गीय यथार्थ और चेतना की जागरूकता

नये कहानीकारों ने निम्नवर्गीय यथार्थ को भी कहीं-कहीं अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न किया है। ऐसा उन कहानीकारों ने भी किया है जो मूलत:

उनके सरोकार हैं तथा जिनकी संपूर्ण मानसिकता मध्यवर्गीय है। उदाहरणार्थ कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव आदि।

नीली झील (कमलेश्वर) का नायक महेसा पहले मजदूर होता है और फिर पारबती से शादी करके महेस पांडे बन जाता है। मजदूरों के जीवन का एक वास्तविक चित्रण इस कहानी में मिलता है।

इसी प्रकार राजेन्द्र यादव की प्रारंभिक कहानी 'बुलिया' में एक पाखंडी बुलिया के साथ एक शोषित और निम्नवर्गीय स्त्री की स्थिति को पहचानने का प्रयत्न किया गया है। 'उसकी बुलिया की पीठ पर मुँह रख कर वह फूट-फूट के रो पड़ी। फिर भी धूल भरी उसकी छोटी बुलिया की पीठ पर चित्र बने - शायद इसी से सुन्दर रही हों।' [1]

कमलेश्वर की कहानी 'जिंदगी और जोंक' का परिवेश तो मध्यवर्गीय है किन्तु कहानी का केंद्रीय पात्र रजुआ निम्नवर्गीय पात्र है। इस कहानी में मध्यवर्गीय घरों का खोखलापन और निम्नवर्गीय परिश्रमी रजुआ के प्रति मध्यवर्ग के लोगों की हृदयहीनता को उद्घाटित किया गया है। 'जिंदगी और जोंक' में कमलेश्वर ने बताया है कि किस तरह अमानवीय परिवेश में इनकी भावनाएँ पलती हैं। बावजूद रजुआ की जिजीविषा मरती नहीं है और वह जोंक के जैसे चिपका रहता है।

राजेन्द्र यादव की कहानी 'ताप' में एक जूता ठीक करने वाले के अभिशप्त जीवन को चित्रित किया गया है। वह थानेदार के घर के जूते और दुकानदार के जूते मुफ्त में ठीक करता है। फिर भी उसकी ठोकरों से पिटाई होती है तथा बदले में उसे गालियाँ मिलती हैं। कहानी का केंद्रीय पात्र 'मैं' भी कि लड़की को बचाने में स्वयं को असहाय पाता है, सोचता है: 'मैं कागज के पन्नों पर लिख सकता हूँ, उन्हें सहानुभूति दिला सकता हूँ, उनके प्रति दया प्रकट कर सकता हूँ, पर जीते जागते मनुष्यों के लिए मेरे पास कुछ नहीं है। इस विडम्बना की विभीषिका भी कागज मात्र पर ही मैं अभिव्यक्त भी करूँ।' [2]

---

1 राजेन्द्र यादव, जहाँ लक्ष्मी कैद है, पृ० 107

2 राजेन्द्र यादव, रेखाएं, लहरें और परछाइयाँ, पृ० 13

फणीश्वरनाथ रेणु मार्कण्डेय, शैलेश मटियानी आदि ने ग्रामीण जीवन को लेकर कहानियाँ लिखी हैं। इन कहानियों में अधिकांशत: निम्न-वर्गीय समाज को ही लिया गया है। इन कहानियों में किसानों के चित्रण के साथ-साथ किसान से मजदूर बन रहे वर्ग को भी चित्रित किया गया है। मार्कण्डेय की कहानी "चांद का टुकड़ा" का मनोहर इसी प्रकार का एक चरित्र है। भौतिक परिस्थितियों से विवश होकर उसे मजदूरी करने के लिए अपने घर से 10 मील दूर जाना पड़ता है। यह कहानी मनोहर तथा उसी के जैसे दूसरे मजदूरों की कठिन जीवन-स्थिति का चित्रण करती है, "मनोहर के फावड़े जमीन में धंसते गये। दोपहर की तेज धूप में वह काम करता रहा। काम का चार रुपये का दाम। मजदूरों की आँखें टंग गयीं। [1]

फणीश्वरनाथ रेणु ने बिहार के ग्रामीण जन जीवन को अपने उपन्यासों की तरह अपनी कहानियों में भी स्थान दिया है। "तीसरी कसम अर्थात मारे गये गुलफाम" में हीरामन गाड़ीवान के संघर्षशील जीवन को चित्रित करके एक मानवीय ट्रेजडी को उभारा गया है। रेणु ने अपनी कहानियों में प्राय: निम्न वर्ग का ही चित्रण किया है और उनकी सहानुभूति प्राय: निम्नवर्गीय पात्रों के साथ ही होती है। रेणु ने ग्रामीण निम्नवर्गीय पात्रों के जीवन के अंतर्विरोधों का चित्रण तो किया ही है साथ ही वे उनके अंतर्मन के चित्रण पर भी जोर देते हैं। अपनी कहानी "सिरपंचमी का सगुन" में वे एक छोटे किसान सिंघाय के आहत मन का चित्रण इस प्रकार करते हैं -
"सिंघाय का दुखा दुखा मन धीरे-धीरे झूमने लगा। उसको लगा अंदर [illegible] गंध वाली भाप उमड़ रही है।... ठाँ... ठाँ...ठाँ... हुन्न। हुँ... उँ.. हुँ... हुँ ऊँ... गुर्र-र।" [2]

ग्रामीण संदर्भ वाली कहानियों में अभिजात वर्ग के लोगों की तरह, फ़ैशन, व्यर्थता और व्यस्तता से भरा जीवन देखने को नहीं मिलता। ग्रामीण कथाकार निम्न वर्गों को, जो कि दमित और शोषित हैं, अपनी कहानियों में

---

1 मार्कण्डेय, हंसा जाई अकेला, पृ० 93

2 फणीश्वरनाथ रेणु, ठुमरी, पृ० 92

स्थान देते हैं।

(ख) मध्य वर्ग और पतनशील जीवन-मूल्य

जैसा कि पूर्व कथित है अधिकतर कथाकारों ने अपने जीवन के मध्य वित्तीय वर्गों के जीवन को ही मुख्यतः अपनी कहानियों का विषय बनाया है। ऐसे भी कथाकार हैं जिन्होंने मध्य वर्ग के नष्ट हो रहे जीवन के चित्रण में, उसी को सत्य मान कर, गहन रुचि से कहानियाँ लिखी हैं। भारतीय संदर्भों में, निश्चय ही ये कथाकार पतनशील मूल्यों के गायक हैं। ऐसे कथाकारों में निर्मल वर्मा का नाम प्रमुख है।

अपनी कहानी 'परिंदे' के प्रारंभ में ही निर्मल वर्मा ने कैथरिन मैन्सफील्ड की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की हैं : "Can we do nothing for the dead? and for the long time the answer had been nothing."[1]

मध्यवर्गीय जीवन को चित्रित करने की प्रक्रिया में कई कहानीकार इसी तरह के भटकाव के शिकार रहे हैं। उनकी कहानियों का केंद्र बिंदु प्रायः दुख और उदासीन चीजें होती हैं। मध्य वर्ग के जीवन को उसकी समग्रता में न देख कर ये कहानियाँ जीवन के प्रति उदासी और ऊब का प्रभाव ही छोड़ती हैं। 'परिंदे' की लतिका का प्रेमी क्योंकि मर चुका है इसलिए उसे अपना जीवन व्यर्थ नजर आता है, उसमें कहीं भी जीवन और आशा का संचार नहीं हो पाता। मृत्यु, ऊब और उदासी की काली छाया जैसे उसके साथ होती है। 'ह्यूबर्ट ठीक कहता, वह क्या किसी को भी याद करेगी, उस अनुभूति के अंग जो अब नहीं, जो छाया की तरह उस पर मंडराती रहती है। न स्वयं मिटती है, न स्वयं मिटती है, न उसे मुक्ति दे पाती।'[2] इस प्रकार का जीवन कहीं [illegible] प्रभाव से मध्यवित्तीय वर्गों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि का संकेत नहीं करता। वह यथार्थवादिता से परे है।

---

1 निर्मल वर्मा, परिंदे, पृ० 134

2 निर्मल वर्मा, परिंदे, पृ० 160

"प्रतीक्षा" (राजेंद्र यादव) की दोनों पात्रें एक समलैंगिक मानसिकता से ग्रस्त हैं। उनका जीवन और परिवेश भी कहानी में ऐसा ही चित्रित है, यद्यपि सामान्य मध्यवर्गीय समाज में ऐसा जीवन नहीं देखा जा सकता। नंदा (छोटी बहन) एक विवाहित पुरुष के प्रेम में पड़ कर अपनी बड़ी बहन गीता की उपेक्षा करती है, किन्तु गीता को उससे केवल लगाव है। यह लगाव इस स्तर है कि लेस्बियन प्रवृत्ति भी उसमें दिखाई पड़ती है।

"उस रात नंदा के निर्लज्ज, समर्पित शरीर को अपनी उत्तेजित बाहों और उन्मत्त बातों में जकड़ उसके दाहिने कान के रुपये के बराबर दाग पर ओंठ रखे गीता पागलों की तरह यही कहती रही, "नंदन मुझे छोड़ कर मत जाना।. ... मैं तेरे बिना मर जाऊँगी।" [1]

"पिता और प्रेमी" (निर्मल वर्मा) में "लड़का" और लड़की मिलते हैं। लड़की परम्बुलर के साथ थी, जिसमें बच्चा है। बच्चे को देख कर लड़का पूछता है:

"तुम्हारा है," जैसे उसके कोट या पर्स के बारे में पूछ रहा हो।

"तुम्हें क्या है" लड़की ने पूछा।

"नहीं, अब नहीं" उसने कहा। [2]

यह सत्य है कि मध्यवर्ग का जीवन यांत्रिक हो गया है। निर्मल उसी यांत्रिक हो गये जीवन की ओर संकेत करना चाह रहे हैं किन्तु यह जीवन को देखने का एक भिन्न दृष्टिकोण है, जो गिरते हुए मानदंडों पर भी उनकी दृष्टि केंद्रित करता है।

"यही सच है" (मन्नू भंडारी) की नायिका का जीवन केवल दो प्रेमियों के बीच झूलता है, उसकी अन्य कोई समस्या नहीं है। यद्यपि कहानी में वह एक मध्यवर्गीय पात्र है, वह नौकरी करती है किन्तु मध्य वर्ग का सत्य तो क्षणवाद नहीं है जबकि कहानी क्षणवाद को अंतिम सत्य मानती है।

---

1 "किनारे से किनारे तक", राजेंद्र यादव, पृ० 4

2 निर्मल वर्मा, पिछली गर्मियों में, पृ० 106

---53

"रजनीगंधा की महक धीरे-धीरे मेरे तन-मन पर छा जाती है, तभी मैं अपने को भूल कर संजय के अधरों का स्पर्श महसूस करती हूं और मुझे लगता है, यह सुख, यह क्षण ही सत्य है, वह सब झूठ था, मिथ्या था, भ्रम था।"[1]

उक्त कहानी में व्यक्ति की यातना के सामाजिक-आर्थिक पहलुओं को प्रकाश में न ला कर जीवन को मात्र ऊब और अजनबीपन से भरा दिखाया गया है।

"खोयी हुई दिशाएं" (कमलेश्वर) का नायक चंदर भी एक आम मध्य-वर्गीय पात्र नहीं लगता। इस व्यवस्था में अपने अस्तित्व को जिलाये रखने के लिए वह कहीं भी अपने आसपास में दखल नहीं रखता। "खोयी हुई दिशाएं" का यह नायक तब एक सिनिक बुद्धिजीवी की तरह लगता है जब चुपचाप पड़ी अपनी पत्नी को बेबात उठा कर झिंझोड़ देता है।[2]

स्पष्ट है कि ये कहानियां वर्गीय जीवन के यथार्थ का चित्रण उतना नहीं करती हैं जितना व्यक्ति मन का असंगत विश्लेषण। ऐसी कहानियों के पात्र अपने आप में डूबे हुए, असाधारण समस्याओं से ग्रस्त, बड़े विचित्र लगते हैं। हर समय उन्हें अपना व्यक्तित्व संकटग्रस्त नजर आता है।

मध्य वर्ग और जीवन का सामाजिक संदर्भ

इस शीर्षक के अंतर्गत वे कहानियां विवेच्य हैं जो ह्रास और विघटन को नकारती हैं, उसे ह्रास और विघटन ही मान कर चलती हैं, जीवन का अंतिम सत्य नहीं। ये कहानियां मृत्यु के विरुद्ध जिजीविषा का संचार करती हैं और व्यक्तिवादी रुझानों के खिलाफ इनका सामाजिक स्वर बेहद प्रखर है।

ये कहानियां आजादी के बाद उभर आये मध्यवर्गीय भ्रमों को तोड़ती हैं और यथार्थ की जमीन पर ला पटकती हैं।

भीष्म साहनी की कहानी "चीफ की दावत" में पूंजीवादी समाज के ढांचे के भीतर मध्यवर्गीय जीवन के खोखलेपन को उजागर किया गया है। मिस्टर शामनाथ के घर चीफ की दावत है। शामनाथ अपनी पत्नी के साथ

---

1 मन्नू भंडारी, मेरी प्रिय कहानियां, पृ० 104

2 सं०-राजेंद्र यादव, कमलेश्वर : श्रेष्ठ कहानियां, पृ० 84

घर की दरारों में भी हैं, उन्होंने 'ह्यूमर' का भी प्रयोग किया है। 'जब घर का सारा सामान अलमारियों के पीछे और पलंगों के नीचे छुपाया जाने लगा। तभी शामनाथ के सामने सहसा अड़चन खड़ी हो गयी - माँ का क्या होगा? ... मिस्टर शामनाथ पत्नी की ओर घूम कर अंग्रेजी में बोले - 'माँ का क्या होगा?[1] शामनाथ घर के अन्य फालतू सामानों की तरह माँ को भी कहीं छुपाना चाहते हैं। यह जीवन की हास्यास्पद स्थिति है, जिसका निहितार्थ परम गंभीर है।

'खेल-खिलौने' (राजेन्द्र यादव) में नलिनी नामक लड़की के जीवन की विडम्बना को उभारा गया है। नलिनी एक आम लड़की की भाँति एक माल (commodity) की तरह इस्तेमाल नहीं होना चाहती। जीवन में कुछ इच्छाएं हैं, वह पढ़ना चाहती है। उसका यह भय अकारण नहीं रहा कि विवाह के बाद उसकी जीवन शक्ति समाप्त हो जाएगी। सचमुच, विवाह के बाद तंग आकर वह आत्महत्या कर लेती है। विवाह के समय पर सुधीन्द्र से नलिनी का यह पूर्वकथन अत्यंत मार्मिक है :

'अब भाई साहब अब नहीं रोऊँगी। क्योंकि जो चीज मेरे पास असाधारण थी, जिसका मुझे गर्व था और जिससे मुझे मोह था - अब पहले से ही उसकी बात छोड़ दी है। अब मैं एक साधारण लड़की हूँ - दुर्बल और कमजोर।'[2]

रामकुमार ने भी समाज के कुछ नये मध्यवर्गीय पात्रों को ले कर कई कहानियों का पाठ किया है। 'पिकनिक' और 'समुद्र' उनकी ऐसी ही कहानियाँ हैं।

सामाजिक अभिजन अपने मातहत लोगों का किस तरह शोषण करते हैं, उसका चित्रण मोहन राकेश की कहानी 'जानवर और जानवर' में हुआ है। कान्वेंट जैसे स्कूल का बड़ा पादरी, बाड़ के कुत्ते को गोली इसलिए मार देता है क्योंकि वह उसकी सुविधा को खराब कर रहा था। बाड़ निर्माण कार्यों में पादरी को कहता है - 'पादरी, हम गिरजे में जो प्रार्थना करते हैं, उसका कोई

---

1 सं०-राजेन्द्र यादव, एक दुनिया : समानान्तर, भीष्म साहनी की कहानी - चीफ की दावत - पृ० 223

2 राजेन्द्र यादव, खेल खिलौने, पृ० 34

मतलब भी होता है ?... मेरा मतलब है पादरी कि रात को हम गरीब जानवरों को गोली मारते हैं और सुबह गिरजे में उनकी रक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं, उसका कुछ मतलब निकलता है ?' [1] कान्वेंट में आई नयी अध्यापिका अनीता को पादरी रात को अपने पास बुलाता है और कोई इस अन्याय के खिलाफ कुछ नहीं बोलता। आर्थिक रूप से खड़ा रह पाने के लिए मध्यवर्ग को किस प्रकार समझौते करने पड़ते हैं, इसका वस्तुपरक चित्रण इस कहानी में मिलता है।

'इंटरव्यू' (अमरकांत) में समाज में बढ़ती बेरोजगारी व व्यापक भ्रष्टाचार की ओर इंगित किया गया है तथा कहानी जीवन को रूखा और अभावग्रस्त बनाने वाली व्यवस्था के विरुद्ध क्रोध की भावना जगाती है। यह कहानी मध्यवर्गीय भ्रमों को तोड़ती भी है :

'इनमें से एक ने अपने हाथों को फैलाते हुए कहा,' क्या पढ़ते हो यार ! मुझे तो मालूम है, चुना जाने वाला पहले ही चुन लिया गया है। इंटरव्यू तो ढोंग है।'

'दूसरे ने विश्वास के साथ प्रतिवाद किया,' ओ नहीं ऐसा नहीं हो सकता। कलक्टर ऐसा नहीं है।' [2] अंत में होता यह है कि औपचारिक तौर पर दो-चार लोगों के इंटरव्यू ले कर सबको यह कह कर वापस भेज दिया जाता है कि उम्मीदवार को चुन लिया गया है। राशनिंग विभाग में 60 रु० की क्लर्की के एक रिक्त पद के लिए आए बेरोजगार युवकों की करुण स्थिति को यह कहानी पैने व्यंग्य के साथ उजागर करती है।

'दुपहर का भोजन' (अमरकांत) में एक निम्नमध्यवर्गीय परिवार का करुण चित्र प्रस्तुत है। परिवार इस कदर आर्थिक रूप से टूटा है कि दुपहर के भोजन के समय बार-बार 'मां' झूठ बोलती है। वह लगभग भूखी ही सो जाती है।

---

1 मोहन राकेश, वारिस, पृ० 163

2 अमरकांत, जिंदगी और जोंक, पृ० 68

तीसरा अध्याय

नई कहानी की वर्ग चेतना

नयी कहानी की मर्म चेतना

नयी कहानी का जन्म सन् 50 के आसपास ही गया था। यह एक विशिष्ट प्रकार का संक्रमण काल था। एक ओर तो भारत की स्वतंत्रता मिली थी और भारतीय जन नयी आशाएं और नये स्वप्न लेकर अपेक्षा के साथ अपने शासक नेताओं की ओर देख रहा था। हिन्दी के कहानीकार भी स्वभावतः ही संवेदनशील होने के कारण इन अपेक्षाओं के भ्रमों में बदलने की प्रक्रिया को अनुभव कर रहे थे।

दूसरी ओर द्वितीय महायुद्ध के बाद युद्ध में शामिल अधिकांश राष्ट्रों की जनता के बीच आतंक और व्यर्थताबोध व्याप्त था। विश्व कथा जगत में इस व्यर्थता बोध के चित्रण का प्रारम्भ फ्रांस के विख्यात लेखक अल्बेयर कामू से माना जाता है। भारत के बुद्धिजीवियों में भी यह व्यर्थता बोध घर कर रहा था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद दिग्भ्रांत युवा पीढ़ी अपनी दिशा तय नहीं कर पा रही थी। नये कहानीकारों की चेतना भी द्वितीय महायुद्ध के बाद के काल में ही निर्मित हुई थी। अतः वे इन्हीं समस्त संदर्भों में अपनी मानसिकता का निर्माण कर रहे थे।

तीसरे देश की पारम्परिक जनवादी शक्तियों के सम्मुख अब भी संघर्ष का विकल्प उपस्थित था। उनके लिए प्रश्न मरण का नहीं बल्कि लड़ने का था। वे शक्तियां अब भी उसी तरह जागरूक, जुझारू और प्रतिबद्ध थीं।

चौथे आजादी के बाद देश विभाजन व गांधी जी की मृत्यु की घटना ने यह एकदम स्पष्ट कर दिया था कि सांप्रदायिक और दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादी ताकतें अब स्वतंत्र भारत पर अपनी काली छाया फैला रही हैं।

इन्हीं संदर्भों में नई कहानी की चेतना का रूप निर्मित होता है। और "नई कहानी" में चेतना के भिन्न व विरोधी (भी) आयाम देखने को मिलते हैं।

"नई कहानी" में चेतना के ये विभिन्न आयाम इसलिए भी प्रतिबिम्बित हुए हैं कि सभी कहानीकारों का दृष्टिकोण समान नहीं है। स्वयं नये कहानीकार मोहन राकेश के शब्दों में "मानसिकता के सामान्य धरातल पर रहते हुए भी इस पीढ़ी के अधिकांश कहानीकार एक दूसरे से स्वतंत्र तथा अपना निजी दृष्टिकोण

है कर रहे हैं और बिल्कुल अलग-अलग तरह से अभिव्यक्ति के प्रयोग कर रहे हैं।"[1]

नई कहानी में अभिव्यक्त नैतिक चेतना को संदर्भों में बांट कर देखा जा सकता है :

(1) राजनीतिक संदर्भ
(2) सामाजिक-आर्थिक संदर्भ
(3) वैचारिक-दार्शनिक संदर्भ
(4) परंपरा व इतिहास का संदर्भ

वैसे तो ये चारों संदर्भ परस्पर सम्बद्ध हैं और इन्हें अलगाव में नहीं देखा जा सकता और नैतिक स्थितियाँ, समग्रता में ही विश्लेषित और व्याख्यायित की जा सकती हैं किन्तु नैतिक चेतना के विश्लेषण के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न कोणों से उस पर प्रकाश डाला जाय।

<u>राजनीतिक संदर्भ</u>

नई कहानी आंदोलन का समय राजनीतिक उथल-पुथल का समय था। स्वतंत्र हो नया पूंजीवाद एक तरफ तो सामंतवाद को न्यूनाधिक रूप में जोड़ रहा था और दूसरी ओर मजदूर वर्ग और श्रमिक जनता के दूसरे हितों पर दमन ढा रहा था। फासिस्ट ताकतें और साम्प्रदायिकता की ताकतें उभर कर सामने आ गयी थीं। शक्तियों का विभाजन स्पष्ट होने लगा था - एक तरफ दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादी ताकतें थीं और दूसरी तरफ वामपंथी-जनवादी शक्तियाँ। इन्हीं शासक पार्टी ~~कांग्रेस के भीतर यह विभाजन मौजूद था~~ ।

नई कहानी के अधिकांश लेखक मध्य वर्ग से आये थे और वे भी इस पूरे सामाजिक अंतर्विरोध को भोग रहे थे। किन्तु फिर भी उनके लेखन में अपेक्षित राजनीतिक प्रभाव का अभाव है।

"नई कहानी" में राजनीति के प्रति कोई नैतिक स्वर सीधे-सीधे नहीं उभरता। "नई कहानी" के लेखक राजनीति के प्रति उतने प्रतिबद्ध नहीं जितने कि उनसे पूर्व के "यशपाल," "उग्र" आदि और बाद के कहानी लेखक हैं। राजनीति के प्रति इन कहानीकारों में कहीं नीरस तटस्थता का बोध होता है

---

1 डॉ०-इन्द्रनाथ मदान, हिंदी कहानी : पहचान और परख, मोहन राकेश का लेख - नयी संभावनाओं की खोज, पृ० 35

---58

लोकहीं उदासीन चुप्पी दिखायी पड़ती है। इसका कारण यह भी है - ऐसा लग जाता है - कि इनमें से अधिकतर कहानियां अस्वाभाविक संदर्भों से ऐन बीच से उभर कर नहीं आयी हैं। व्यक्ति के केंद्र में होने के कारण राजनीतिक संदर्भों को अछूता छोड़ दिया गया है।

इस प्रकार "नई कहानी" में सीधे-सीधे राजनीति का दखल नहीं है किन्तु जहां कहानी में देश काल की व्यवस्था और राजनीति के संबंध में सवाल उठता है, वहां-वहां उसकी प्रगतिशील मध्यवर्गीय चेतना मुखरित हुई है। नई कहानी के अंतर्गत व्यंग्य कथाओं में भी यह स्वर प्रत्यक्षतः देखने को मिलता है। हरिशंकर परसाई की कहानी "भोलाराम का जीव" का भोला एक निम्नमध्यवर्गीय पात्र है। कहानी में भोलाराम तो मर जाता है लेकिन उसका जीव पेंशन के लिए आफिस-दर-आफिस घूमता है। कहानी मध्यवर्गीय व्यक्ति की लाचार और बेबसी की नयी वर्गीय स्थिति का खाका सामने रखती है। कहानी का अंत इस विद्रूपमय स्थिति में होता है कि भोलाराम के मरने के बाद उसका जीव दबा रह जाता है। नारद उसे ढूंढते हुए साहब के पास पहुंच जाते हैं। नारद जोर से उसका नाम ले कर साहब से पुकारता है तो फाइल से आवाज आती है, "कौन पुकार रहा है मुझे? पोस्टमैन है क्या? पेंशन का आर्डर आ गया?"[1]

इसी प्रकार हरिशंकर परसाई की कहानी "पोस्टरी एकता" में देश में दिखावटी एकता पर करारी चोट की गयी है। कहानी बताती है कि आज देश की एकता पोस्टरों में ही व्यक्त हो रही है।... जब कहीं दंगे हो रहे हैं। दंगे बंद करने के उपाय किये जाते हैं। नागरिकों से "जोर" ही जब भी दंगे बंद नहीं करते। "हाथ साथ उठे हुए पोस्टर" चिपका दिये जाते हैं, मगर दंगे हैं कि बंद होने का नाम ही नहीं लेते। पोस्टर में एक आदमी का एक हाथ मिल रहा है, मगर दूसरे हाथ में छुरा है। छानबीन की गयी, नया पोस्टर बना, जिसमें दोनों हाथ मिले हुए थे। उसे देख कर पंजीपति खुश होते हैं और वक्तव्य देते हैं - "अरी बेटी, अब छुरा कैसे मारोगी?"[2] पूरी कहानी में

---

1 एक दुनिया समानान्तर, संपादित राजेंद्र यादव, पृ० 378

2 नई कहानियां 1968, पोस्टरी एकता, हरिशंकर परसाई पृ० 121

एक स्पष्ट राजनीतिक चेतना उभरती है, जो पूंजीवादी शासन तंत्र के भीतर 'स्वतंत्रता' की पूंजीवादी अवधारणा को स्पष्ट करती है।

निर्मल की कहानी 'लंदन की एक रात' को भी प्रायः एक राजनीतिक कहानी कहा जाता है। यह इसलिए भी कि कहानी का प्रमुख रंग भेद को अपना मुख्य बनाती है। कहानी अश्वेत लोगों के प्रति श्वेतों द्वारा बरते गये भेदभाव को उजागर करती है और साथ ही यह भी कि एक खास पीढ़ी के युवक [illegible] किस तरह धीरे-धीरे खटके नष्ट हो रहे हैं। नीग्रो युवक पात्र पुनः अपने देश वापस जाने को हो रहा है।[1] क्यों कि उसे मालूम है कि अगर वह घर वापस चाहता तो ये लोग उसे नहीं छोड़ेंगे। वह जर्मनों से भी घृणा करता है। इसके अलावा कहानी युद्ध के खिलाफ भी यह बोध प्रदान करती है कि युद्ध अमानवीय है। कहानी के दूसरे पात्र विली के मन में युद्ध के प्रति घृणा भाव है।[2]

कमलेश्वर की कहानी 'जार्ज पंचम की नाक' एक ऐसी कहानी है जो आज की राजनीति पर करारा व्यंग्य है। रानी ऐलिजाबेथ के आगमन पर सारे देश को नये सिरे से सजाया जाता है, रास्ते और दूसरे सार्वजनिक स्थानों को सजाया जाता है। मगर जार्ज पंचम की मूर्ति की एक नाक गायब पाई जाती है। जार्ज पंचम की मूर्ति के लिए नाक की खोज की जाती है, बड़े प्रयासों के बाद एक जीवित व्यक्ति की नाक मूर्ति पर फिट कर दी जाती है और उसे लगा दिया जाता है। भारतीय शासन व्यवस्था के औपनिवेशिक चरित्र को ले कर यह एक व्यंग्य है। रानी ऐलिजाबेथ के भारत आगमन को ले कर काफी चर्चा होती है। लेखक कहता है: 'बड़ी धूम थी, बड़ा शोरशराबा था। शोर इंग्लैंड में जब उठा था, गूंज हिन्दुस्तान में आ रही थी।'[3]

मनहर चौहान की कहानी 'छिपकली' पत्रकारी जीवन पर लिखी गयी है। इस में पत्रकारी जीवन के ईर्ष्या-द्वेष को दिखाया गया है। इससे यह स्पष्ट

---

1 पिछली गर्मियाँ, निर्मल वर्मा, पृ० 109

2 वही, पृ० 110

3 सं०-राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ० 44

ली जाती है कि किस तरह अपने संकीर्ण व छोटे-छोटे स्वार्थों के चलते नेतागण एक दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश करते हैं। मालिक किस प्रकार अपना उल्लू सीधा करने की राजनीति चलाते हैं - इस यथार्थ को व्यक्त करने वाले दो पात्र हैं - अजय कुमार सिंह और सिन्हा। दोनों परस्पर ईर्ष्या करते हैं। 'मालिक जानबूझ कर कभी एक के पुट्ठे पर हाथ रखते हैं और कभी दूसरे के, क्योंकि वह जानते थे कि एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए वे अच्छी तरह परिश्रम करते हुए एक दूसरे की नीचताओं पर पर्याप्त अंकुश भी लगाये रहेंगे।'[1]

मालिकों (पूंजीपतियों) की इस राजनीति का पर्दाफाश करने के साथ-साथ अमरकांत की कहानियां यह भी बताती हैं कि 'हमारी पूंजीवादी व्यवस्था की गिरफ्त में आदमी किस कदर टूटता और आत्मकेंद्रित होता जाता है।'[2]

स्पष्टतः नई कहानी आंदोलन के दौरान राजनीतिक संदर्भों पर लिखी गयी कहानियों की कमी खटकती है। इतने सारे राजनीतिक उथल-पुथल के बाद भी इस दौर की अधिसंख्यक कहानियों के केन्द्र में सीमित परिवेश में सिमटा व्यक्ति है।

नई कहानी के अंतर्गत फणीश्वरनाथ रेणु शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय आदि आंचलिक कहानीकारों की कहानियों में भी राजनीतिक पुट मिलता है। इन कहानीकारों में से विशेषकर फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में राजनीति कहानी में चित्रित जीवन की पृष्ठभूमि बन कर उभरी है।[3] उनकी 'जलवा' नामक कहानी में फातिमा दी जीवन भर राजनीति को सत्य और मानवीय मुक्ति का एक अस्त्र मान कर चलती रहीं फिर भी आजादी के बाद

---

1 अमरकांत, देश के लोग, पृ० 86

2 आलोचना, अप्रैल-जून, 1977, मधुरेश का लेख 'अमरकांत के बहाने हिंदी कहानी पर बातचीत,' पृ० 110

3 'उनके साहित्य में राजनीति जिस भांति समाविष्ट रही है - वह भी हिंदी साहित्य के लिए एक आदर्श रहा है। यहां राजनीति ही जीवन की पृष्ठभूमि बन जाती है। ...' (लक्ष्मणदत्त गौतम, आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में प्रगति चेतना, पृ० 389)

उनकी पीठ पर दलित की सीढ़ी तोड़ दी जाती है । इसी प्रकार उनकी कहानी "आत्मवाहनी" का नायक भी राजनीतिक रूप से ईमानदार रहने की कोशिश करता है, उसमें आत्म छलावा है ।

जिस प्रकार सिंह की कहानियाँ "कर्मनाशा की हार," "घाटा की कीमत" और "डरा पीपल कभी न डोले" में भी जो कि परोक्ष रूप से व्यवस्था और गंदी राजनीति के विरुद्ध ही उदित है । इसी स्तर पर रुद्र मार्कण्डेय की कहानियाँ "घुन," "मधुपुर के सिवान का एक कोना" में उभरा है ।

स्पष्टतः राजनीतिक मंतव्य का सीधा-सादा चित्रण यहाँ भी नहीं हुआ है । हाँ, राजनीति के प्रति एक कहीं स्पष्ट और कहीं नितांत अस्पष्ट संवेदना अवश्य उभर आती है । फिर भी नई कहानी के संबंध में यह निश्चित है कि यहाँ राजनीतिक संदर्भ को जहाँ कहीं भी उद्घाटित किया गया है, वहाँ उसे सहज रूप में जीवन का अंग बना कर ही प्रस्तुत किया गया है ।

सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्ति के बाद से भारत में हमारे मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों को सामाजिक क्रांति की संभावनाएं दिखायी दे रही थीं । किंतु भारतीय संघ के शासक उन अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं कर पाये । स्वातंत्र्योत्तर काल के लगभग सभी कहानीकार मध्यम वर्ग (उच्च मध्य वर्ग व निम्न मध्य वर्ग) से आये थे । अतः आजादी के बाद से सामाजिक-आर्थिक जीवन के प्रति उनकी कहानियों में उनकी कथित चेतना दो प्रकार से व्यक्त हुई है । एक तो सामाजिक-आर्थिक जीवन के बीच घुट रहे व्यक्ति मन के चित्रण मात्र के रूप में । दूसरे, सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के अंतर्विरोधों के चित्रण के रूप में ।

कहानियों में पहले प्रकार का चित्रण निम्नपूंजीवादी कुण्ठित मानसिकता के अधिक निकट पड़ता है । इसे विकृत कथित चेतना भी कहा जा सकता है । इसमें केवल व्यक्ति मन की कुंठाओं आदि को ही प्रमुख बनाया गया है । इस प्रकार की कहानियों को व्यक्ति यथार्थ की कहानियां भी कहा गया है, जो कि अनुचित है क्योंकि व्यक्ति यथार्थ और सामाजिक यथार्थ, दोनों एक

अंतर्विरोध हैं कि उनके बीच विभाजक रेखा खींचना यथार्थ की मूल अवधारणा को ही विकृत कर देना। हाँ, इन कहानियों के बारे में अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि ये आंशिक यथार्थ की कहानियाँ हैं।

'एक कमजोर लड़की की कहानी', 'प्रतीक्षा', 'किनारे से किनारे तक' (राजेन्द्र यादव) 'परिन्दे', 'दिसंबर की एक शाम' (निर्मल वर्मा), 'यही सच है' (मन्नू भंडारी) आदि कहानियाँ, वस्तुत: सामाजिक-आर्थिक संदर्भों से कटी रह जाती हैं। सामाजिक-आर्थिक संदर्भों से मानवीय सत्य को काट कर देखने के प्रयास की झलक इन कहानियों में मिलती है। उदाहरणार्थ 'परिन्दे' कहानी में केवल लतिका, ह्यूबर्ट आदि के ऐसे व्यक्ति-केन्द्रित चरित्र देखने को मिलते हैं, जो कि अपनी ही कुंठाओं से ग्रस्त हैं और अपने अतीत को ढो कर जीते हुए हैं। 'परिन्दे' और उस जैसी अन्य कहानियों को ले कर डा० नामवर सिंह ने कहा है कि 'ये कहानियाँ जीवन की विभिन्न स्थितियों के संदर्भ में आज के सबसे बड़े मानव मूल्य - मानव मुक्ति - को परिभाषित करती हैं।'[1] किंतु स्वाभाविक ऐसा है नहीं क्यों कि यदि ऐसा होता तो फिर ये कहानियाँ मानव मुक्ति के केन्द्रीय प्रश्न - अमानवीय शोषण से मानव मुक्ति - के प्रश्न को ले कर चलतीं और इस प्रकार समाज के सब से अधिक शोषित वर्ग - सर्वहारा वर्ग - की चेतना इनमें प्रतिबिंबित होती। वास्तव में कहानी जिस वर्ग का चित्रण करती है, वह वर्ग चेतना के संदर्भ में उतना महत्वपूर्ण नहीं होता जितना कि लेखक की जनपक्षधरता और दृष्टिकोण। उच्च वर्गों के चित्रण में भी क्रांतिकारी चेतना की अभिव्यक्ति हो सकती है, यद्यपि 'परिन्दे' और उस जैसी कहानियाँ ऐसा नहीं करतीं। इनके लिए लतिका और ह्यूबर्ट का अमूर्त दर्द ही अंतिम मानव-सत्य है। उदाहरणार्थ 'परिन्दे' कहानी की लतिका को अकेलापन साल जाता है। वह अपने गुजरे हुए प्रेम के क्षणों में खोयी रहती है, उसके लिए यही सबसे बड़ी संपत्ति है। वह उस अतीत से मुक्ति भी चाहती है। कहानीकार के शब्द हैं - 'लतिका को लगा कि जो वह याद करती है, वही भुलाना भी चाहती है, लेकिन

---

1 नामवर सिंह, कहानी : नयी कहानी, पृ० 69

जब उपन्यास पूछने लगती है, तब उसे भय लगता है कि कैसे कोई उसकी किसी चीज को उससे छीने ले जा रहा है।" [1] निर्मल वर्मा यहाँ भी सफल हैं इस प्रश्न को तोड़ते नहीं हैं बल्कि सहानुभूति पूर्वक पूरी कहानी में उसको चित्रित करते हैं। अतः प्रश्न और भीड़ के प्रति यह लगाव लेखक की निम्न-पूंजीवादी चेतना से भी निःसृत है।

इसी प्रकार 'खोयी हुई दिशाएं' (कमलेश्वर) का केंद्रीय पात्र चंदर एकदम आत्मकेंद्रित है। वह व्यवस्था की आपाधापी से ग्रस्त है। उसे उस पूरे शहर में कहीं कोई 'पहचान' नहीं मिल रही है। वह चाहता है कि कोई उसे पहचाने। एक अजनबी आदमी उसे मिलता है और चंदर को पहचान लेता है। चंदर सोचता है : 'अजनबी ही सही, पर उसने पहचाना तो, उसकी पहचान भी बड़ा सहारा देती है।' [2]

कमलेश्वर की यह कहानी निम्नवर्ग यथार्थ की कहानी कही जाती है किन्तु वास्तविकता यह है कि इस कहानी में लेखक निम्न मध्यवर्गीय जीवन के सामाजिक-आर्थिक संघर्षों के प्रति एक उपेक्षा भाव रखता है। वह सामाजिक आर्थिक संघर्षों को छूता अवश्य है किन्तु उसके लेखन का केंद्र जीवन में अवास्तविक पहचान की खोज करने पर ही केंद्रित है। 'पहचान की खोज' का नारा द्वितीय महायुद्ध के बाद पश्चिमी लेखन से हिन्दी साहित्य में आया है। जीवन से कटे ये पात्र अपनी 'संवेदनशीलता' के चलते जीवन को उसके अंतर्विरोधों के साथ चित्रित नहीं कर पाते। यह ठीक है कि कमलेश्वर की यह कहानी हिन्दी साठ वर्षों में यथार्थवादी कह दी जाय किन्तु वास्तविकता यह है कि इसी मानव की दिशाएं खोयी नहीं। मुक्ति पथ पर बहुत सारे लोग अग्रसर हो रहे हैं और साहित्य में भी मुक्ति की यह आवाज गूंज रही है। यह कहानी भ्रमों की पुष्टि करती है और इसीलिए पश्चिम के साम्राज्यवादी देशों के साहित्य में उपजे नारे 'पहचान की तलाश,' व्यक्ति का अकेलापन आदि जो कि व्यक्ति के असामाजिक होने की प्रवृत्ति पर जोर देते हैं वे नारों से प्रभावित है। इस प्रकार की कहानियाँ

---

1 निर्मल वर्मा, 'परिंदे' जनवरी, 1960, पृ0 154

2 सं0-राजेन्द्र यादव, एक दुनिया समानांतर, पृ0 138

उस सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि की ओर यहाँ भी इंगित नहीं करतीं जो कि इस अकेलेपन या अलगाव के लिए उत्तरदायी है।

दूसरे प्रकार की कहानियाँ सीधे-सीधे सामाजिक रिश्तों, आर्थिक संबंधों को अपना विषय बनाती हैं और सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से युक्त हैं। "चीफ की दावत (भीष्म साहनी)" "तलवार पंचहजारी," "टूटना" (राजेन्द्र यादव), "फौलाद का आकाश," "आर्द्रा," "मिस पाल" (मोहन राकेश), "जिंदगी और जोंक," "दोपहर का भोजन (अमरकांत), "नीली झील," "देवा की माँ" (कमलेश्वर) और "सेलर" (रामकुमार) आदि इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। ऐसा नहीं है कि इन कहानियों में सर्वहारा वर्ग की क्रांतिकारी चेतना चित्रित हुई है। यही कहना उपयुक्त है कि ये कहानियाँ पूँजीवादी मानसिकता से क्योंकि मुक्त हैं और इनमें से कुछ कहानियाँ तो सीधे-सीधे सामाजिक-आर्थिक सवालों को उठाती हैं। उदाहरणार्थ भीष्म साहनी की कहानी "चीफ की दावत" में दिखाया गया है कि माँ पुत्र का परम्परागत रिश्ता किस प्रकार एक नया और भिन्न रूप धारण कर लेता है। माँ को लेकर कथा का केंद्रीय पात्र शामनाथ बड़ी शर्मिंदगी महसूस करता है, क्यों कि माँ अनपढ़, बूढ़ी और पुराने चाल-चलन की महिला है। जब शामनाथ दावत पर अपने चीफ को आमंत्रित करता है तो उसके सामने बड़ी समस्या है - "माँ का क्या होगा।" [1] गोया, माँ भी घर का कोई फालतू और टूटा-फूटा सामान हो। यहाँ पर स्पष्टतः लेखक का मंतव्य यह दिखाना है कि किस तरह आजादी के बाद घरेलू जीवन और रिश्ते आर्थिक जीवन से प्रभावित हो रहे हैं।

इसी प्रकार अमरकांत की कहानी "जिंदगी और जोंक" में निम्नवर्गीय पात्र रजुआ के जीवन की करुण कथा को नितांत वस्तुगत रूप से प्रस्तुत किया गया है। "रजुआ" में अपनी तमाम कमजोरियों के बावजूद अदम्य जिजीविषा है। लेखक रजुआ की जिजीविषा को अंत में इस प्रकार से उभारता है :

"उसके मुख पर मौत की छाया नाच रही थी और वह जिंदा है जौंक

---

1 डॉ० राजेन्द्र यादव, एक दुनिया समानांतर, पृ० 220

की तरह चिपटा था - लेकिन कौन वह था या जिंदगी ? वह जिंदगी का खून चूस रहा था और जिंदगी उसका ? - मैं तय न कर [illegible] सका।" [1]

शेखर जोशी की कहानी "बदबू" का "वह" एक कारखाने में मजदूर है। यह कहानी सीधे-सीधे मजदूरों के जीवन पर लिखी गयी है। कहानी का मुख्य पात्र "वह" जब पहले दिन फैक्टरी में काम करने जाता है और लौटते समय साबुन से तीन बार मल-मल कर हाथ धोता है तो भी उसे हाथों में बदबू महसूस होती है। बदबू मजदूरों के जीवन का एक आवश्यक अंग बन गयी है, बदबू के प्रति वे संवेदनहीन हैं किन्तु "वह" उस बदबू से परेशान है। "वह" मजदूरों के हित के लिए आन्दोलन के उठाना भी चाहता है तो पाता है कि ऐसा संभव नहीं है। उसे फैक्टरी में तरह-तरह से परेशान करने की कोशिश की जाती है, किन्तु अंत तक वह उस "बदबू" को महसूस करता रहता है। "बदबू" इस कहानी में मजदूरों के संघर्षपूर्ण जीवन का प्रतीक है। इस प्रकार यह कहानी मजदूर वर्गीय यथार्थ की कहानी है।

रामकुमार की कहानी "सेलर" का "वह" एक निम्नमध्यम वर्गीय पात्र और असमर्थ पिता है, जो अपनी विवशता के कारण अपने पुत्र के जीवन को चुपचाप नष्ट होते देखता भर है, बस। वह कुछ कर नहीं पाता क्योंकि वह अपने ऊपर भी किसी न किसी तरह आश्रित है। मध्यम वर्गीय जीवन की विवशता को इस कहानी में बखूबी उभारा गया है। "वह" अपने पुत्र "मुन्नू" से पूछता है - "अच्छा मुन्नू तुम बड़े हो कर क्या बनोगे?" तो मुन्नू कोई जवाब नहीं देता। वह भय और आश्चर्य से रो पड़ता है। [2]

राजेन्द्र यादव की कहानी "टूटना" में मध्यमवर्गीय और उच्चवर्गीय संस्कारों की एक टकराहट दिखायी देती है। यह कहानी स्पष्टतः मध्यवर्गीय चेतना की परिचायक है। यदि पति और पत्नी भिन्न वर्गों के हों तो जीवन असंगत हो जाता है। स्पष्टतः यह कहानी यह भी बताती है कि सामाजिक जीवन में वर्गीय संस्कार अपरिहार्य हैं और कहीं न कहीं जीवन में आड़े आते हैं।

इस प्रकार नयी कहानी में सामाजिक-आर्थिक धरातल पर विभिन्न पहलू दिखायी देते हैं, किन्तु मुख्य चेतना मध्यवर्गीय है।

---

1 सं०-राजेन्द्र यादव, एक दुनिया समानान्तर, पृ० 92

2 वही, पृ० 332

वैचारिक-दार्शनिक संदर्भ

कोई भी दर्शन अपने समय ~~[illegible]~~ की निश्चित शक्तियों (वर्ग-शक्तियों) के हितों का प्रतिनिधित्व करता है। इसके साथ-साथ कोई भी दर्शन किन्हीं वस्तुगत और आत्मगत स्थितियों-परिस्थितियों का परिणाम होता है। साहित्य में कथित चेतना किसी विशेष दर्शन के प्रति आग्रह या उसके प्रभाव ग्रहण करने के रूप में भी प्रस्तुत होती है।

व्यक्ति स्वतंत्रता पूंजीवाद का नारा और पूंजीवाद सकारात्मक देन है। किंतु पूंजीवाद की विकृतियों के साथ-साथ व्यक्ति-स्वतंत्रता के नारे की ऐतिहासिक भूमिका भी खत्म होती गयी और व्यक्ति स्वतंत्रता की प्रारंभिक परिकल्पना धीरे-धीरे विकृत होती गयी। साहित्य में उसका प्रकट प्रमाण है - दूसरे महायुद्ध के बाद का साम्राज्यवादी देशों का साहित्य। दूसरे महायुद्ध के बाद अस्तित्ववाद - जो कि पूंजीवाद के विकृततम रूप, साम्राज्यवादी समाज व्यवस्था के अंतर्विरोधों से जनित था - सीधे-सीधे साहित्य में अपनी शब्दावली के साथ घुसपैठ करने लगा। अस्तित्ववाद का यह प्रतिफलन उन साम्राज्यवादी देशों के कहानीकारों की एक घोर मिथ्या चेतना था जो अपनी अंतिम परिणति में साम्राज्यवादी देशों के निर्धन जनगण को संघर्ष से विमुख करता था। यह दर्शन नियतिवाद को प्रश्रय देता था। यह निराशावाद, परायेपन, अजनबीपन, विराग, निस्संगता और अकेलेपन को व्यक्ति की नियति बताता था।

नई कहानी इस अस्तित्ववादी दर्शन के प्रभाव से मुक्त नहीं है। परायापन, अकेलापन, विराग, निस्संगता-- सब उसमें है। किन्तु उसमें उतना विकृत और विरूप जीवन नहीं है जो काफ्का की कहानियों में मिलता है।

इसमें संदेह नहीं कि नई कहानी में व्यक्ति चरित्रों का उद्भव हुआ है और नये कहानीकार व्यक्ति स्वतंत्रता के हामी रहे हैं। यह साहित्य में पूंजीवादी चेतना का प्रतिफलन है।

निर्मल की कहानी "परिंदे" स्पष्टतः अस्तित्ववादी दर्शन को निम्न-पूंजीवादी मानसिक चेतना के धरातल पर ग्रहण करती है। "परिंदे" में निर्मल वर्मा मृत्यु, निराशा और व्यर्थता बोध को गहराते हैं। श्रीकृष्ण माथुर से

अनुसार, निर्मल वर्मा की "परिंदे" शीर्षक कहानी में परिंदे-मरणापन्न मनुष्यों के प्रतीक हैं। कहानी के अंत में झुकता हुआ [illegible] मरणासन्न प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है।[1] यह प्रवृत्ति मूलतः ह्रासमान मूल्यों को उजागर करती है। यह निश्चय ही एक क्रांतिकारी वर्ग की चेतना नहीं है।

राजेंद्र यादव की कहानी "प्रतीक्षा" में गीता एक व्यर्थतामयी प्रतीक्षा में लीन है। उसकी "प्रतीक्षा" को अर्थ देने या उसके माध्यम से गीता के जीवन की ट्रेजडी को उभारने के बजाय लेखक भटक ■ जाता है। गीता अपनी बहन नंदा को अपना सब कुछ मान कर चलती है और उसी में वह अपने जीवन का सार ढूंढने की कोशिश करती है। कई स्थलों पर नंदा के प्रति उसका प्रेम समलैंगिक प्रेम लगने लगता है - "उस रात नंदा के निर्वस्त्र, समर्पित शरीर को अपनी उत्तेजित बाँहों और उन्मत्त पाँवों में जकड़े, उसके दाहिने वक्ष से कलेजे के बराबर दाब कर होंठ रखे, गीता पागलों की तरह बस यही कहती रही, "नंदन मुझे छोड़ कर मत जाना। मैं तेरे बिना मर जाऊँगी, नंदन।"[2] स्वाभाविक रूप से यह कहानी मानवीय जीवन के वास्तविक दुःख-दर्द से हट कर उच्चमध्य वर्गीय मानसिकता गीता के निस्सार जीवन को रोचकता से प्रस्तुत करता है। इस प्रकार कहानी के मूल में एक निष्प्राण स्वर ही शेष रह जाता है।

ऐसा नहीं कि निम्नपूंजीपति वर्गीय मानसिकता ही जो कि निस्सार जीवन को सत्य और अंत मान कर चलती है, समूची नयी कहानी में व्याप्त है। उसमें संघर्ष की चेतना भी है और जीवन की ठोस समस्याओं को चित्रित करने की क्षमता भी है। ऐसी कहानियाँ यद्यपि नई कहानी का मूल स्वर भले ही न बन पायी हों, मगर ऐसी कहानियों की कमी नहीं है। ये कहानियाँ क्रांतिकारी विचारधारा से उपजी हुई न हो कर भी क्रांतिकारी वर्ग की चेतना के करीब हैं। ऐसी कहानियों में "जहाँ लक्ष्मी कैद है" (राजेंद्र यादव), "दोपहर का भोजन," "इंटरव्यू," "जिंदगी और जोंक (अमरकांत)," "चीफ की दावत"

---

1 डॉ० रामदरश मिश्र, हिंदी कहानी : दो दशक की यात्रा, कृष्णा जाजू का लेख नयी कहानी की क्या यात्रा : प्रतीक दृष्टि पृ० 258

2 राजेंद्र यादव, "किनारे से किनारे तक," पृ० 41

(भीष्म साहनी), "जानवर और जानवर" (राकेश) आदि का नाम लिया जा सकता है।

"जहाँ लक्ष्मी कैद है" कहानी में अंधविश्वासों और अमानवीय विचारों से एक शोषक पिता द्वारा अपनी लड़की लक्ष्मी को यातना झेलने को विवश कर देने की करुण कहानी है। कहानी स्पष्टतः एक सामाजिक व्यंग्य है और वैचारिक स्तर पर यह कहानी समाज के खोखले और आधारहीन विश्वासों पर करारा प्रहार है।

"नई कहानी" मार्क्सवाद-लेनिनवाद की विचारधारा से सीधे-सीधे प्रभावित नहीं है। नई कहानी आंदोलन के दौरान नये कहानीकारों ने कहीं भी यह दावा नहीं किया कि वे मार्क्सवाद-लेनिनवाद की विचारधारा के रूप में अपना रहे हैं। राजेन्द्र यादव आदि ने मध्यवर्ग से प्रतिबद्धता के विचार अवश्य व्यक्त किये हैं। राजेन्द्र यादव ने "जहाँ लक्ष्मी कैद है" की भूमिका में यह स्वीकार किया कि वे मध्यवर्ग के लेखक हैं और उसी के बारे में लिखते हैं।[1]

यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि अपने विचारों में जहाँ राजेन्द्र यादव आदि नये कहानीकार इस बात का दावा करते हैं कि मध्यवर्ग के लेखक हैं वहाँ व्यवहार में कुछ सीमा तक वे इसे निभाते भी हैं, किन्तु इन कथाकारों की चेतना समग्रता में मध्यवर्गीय समाज के विकास और ऐसी विचारधारा और जीवन के प्रति ऐसे दृष्टिकोण के रूप में अभिव्यक्त होती है जो कहीं-कहीं सामाजिक धरातल पर शोषित तबकों के पक्ष में है और अधिकांश रूप में कुण्ठित है। यही कारण है कि कहीं-कहीं ये कथाकार प्रेम, मानवीय पीड़ा आदि को इतना दोषयुक्त और आत्मकेन्द्रित बना देते हैं कि अंततः वे पूंजीवादी विचार तंत्र से उद्भूत अस्तित्ववादी दर्शन के साथ प्रतिबद्ध हो जाते हैं। लेखकों में यह पश्चाताप अवश्य और स्वाभाविक रूप में नहीं है - यहाँ यह तथ्य अत्यंत विशिष्ट बन जाता है क्योंकि लेखक का वर्ग-चरित्र और विचारधारा उसकी संपूर्ण चेतना को सहज रूप में ही प्रभावित करती है। राजेन्द्र यादव की कहानी "छोटे-छोटे ताजमहल" में प्रेम के अत्यंत संवेदनशील प्रसंगों को उभारा गया है किन्तु अंत में

---

1 "... आरोप से नहीं बचा जा रहा है। मैं खुद यह कहता हूं कि मैं निम्नमध्य वर्ग को जानता हूं और प्रायः उसी के बारे में लिखता हूं। (भूमिका, जहाँ लक्ष्मी कैद है)

----०

कहानी क्षणवाद पर आकर समाप्त हो जाती है।

इस प्रकार वैचारिक-दार्शनिक अर्थों में नई कहानी के कई कथाकारों में जहाँ जीवन को मार्मिक रूप में देखने और जीवन से जुड़ने का प्रयास है तो वहाँ क्षणबद्ध और आत्मकेन्द्रित होने की ओर भी एक उन्मुखता झलकती है।

परम्परा और इतिहास का संदर्भ

परम्परा और इतिहास के प्रति नये कथाकारों का क्या रुख है, वह उनकी वर्ग दृष्टि और वर्ग चेतना के उद्घाटन में एक अत्यंत अनिवार्य कारक है। जैसा कि पूर्व-कथित है - नई कहानी में वैचारिक स्तर पर विभिन्न विचार-प्रणालियाँ सक्रिय रही हैं ये विचार प्रणालियाँ ही इतिहास और परम्परा के प्रति किसी के विचारों को निर्धारित करती हैं।

अस्तित्ववाद, पूंजीवादी पश्चिम के ह्रासमान मूल्यों, अवैज्ञानिक अव-धारणाओं से प्रभावित कहानियाँ स्पष्टतः परम्परा और इतिहास विरोधी मुद्राओं से युक्त होंगी। ये कहानियाँ मृत्यु और पीड़ा को अंतिम सत्य मान लेने की तरफ ले जाती हैं और कहीं भी मानव मुक्ति के किसी भी द्वार की ओर इंगित नहीं करतीं। दूसरी तरफ वे कहानियाँ भी हैं जो जीवन को उसके यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती हैं और 'मूड' क्षण और भंगिमाओं में समय तथा सच्चाई को बांट कर नहीं देखतीं।

प्रत्येक सामाजिक सत्य की एक परम्परा होती है। कुछ भी यादृच्छिक रूप से घटित नहीं होता। वे सामाजिक विकास के नियम ही होते हैं जो घटनाओं, सामाजिक स्थितियों और आंदोलनों को प्रभावित करते हैं।

नई कहानी में इतिहास-विरोधी मुद्राओं से युक्त कहानियाँ ही अधिक मिलती। अपने [redacted] सार में और अपने निहितार्थ में नई कहानी इतिहास को नकारती है व परम्परा को तोड़ती है। इतिहास को नकारने और परंपरा को तोड़ने की यही प्रक्रिया नये कथाकारों को दिग्भ्रमित करती है।

'लवर्स' (निर्मल वर्मा), 'छोटे-छोटे ताजमहल' (राजेन्द्र यादव), 'यही सच है' (मन्नू भण्डारी), 'परिंदे' (निर्मल वर्मा) जैसी प्रतिनिधि कहानियों

में छोटे-छोटे टुकड़ों में बांट कर जीवन के यथार्थ को समझने-समझाने का प्रयत्न किया गया है। इन कहानियों को पढ़ कर लगता है कि चीजें अलगाव और अकेलेपन में घटित हो रही हैं। 'लवर्स' और 'छोटे-छोटे ताजमहल' के प्रेमी युगल अपने आसपास से असंपृक्त हैं। 'परिंदे' की लतिका और 'यही सच है' की 'दीपा' भी लगता है अलग और अकेलेपन में जीवन जी रही हैं। उनके लिए जैसे जीवन अलगाव और अकेलेपन में घटित हो रहा है। ... उनके लिए तमाम चीजें जैसे मर गई हैं और अपना दर्द, अपना प्यार और अपने जिये हुए क्षण ही अन्तिम सत्य हैं। स्पष्टत: ही ऐसे में उनका प्यार, उनकी संवेदनाएं कहानी में सार्थक मूल्य बन कर नहीं उभर पातीं।

किन्तु 'नई कहानी' के अंतर्गत परम्परा और इतिहास से जुड़े हुए यथार्थवादी कथाकार भी हैं जो अपने समय और यथार्थ को समस्त प्रवाह से काट कर नहीं देखते। हरिशंकर परसाई, अमरकांत, भीष्म साहनी आदि ऐसे ही कथाकार हैं।

वस्तु, इतिहास और परम्परा से असम्पृक्त करके घटनाओं, जीवन स्थितियों और प्रसंगों पर दृष्टिपात करना उसी विभ्रमित करने वाली पूंजीवादी मिथ्या चेतना का अंग है, जो कि वैज्ञानिक विचारों और विचारधारा मात्र की विरोधी है। यह मिथ्या चेतना नई कहानी में बड़े पैमाने पर अभिव्यक्त हुई है।

चतुर्थ अध्याय

- उपसंहार -

उपसंहार

वर्ग समाज के उन बड़े जन-समूहों को कहते हैं जिनका उत्पादन के साधनों से उनके संबंधों के आधार पर स्पष्ट विभाजन होता है। वर्ग विभक्त समाज में शोषक और शोषित दो बड़े वर्ग अनिवार्य रूप से अस्तित्व में होते हैं। उदाहरणार्थ पूंजीवादी समाज में पूंजीपति वर्ग और मजदूर वर्ग अनिवार्यत: दो प्रधान वर्ग होंगे। एक का उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व होता है और दूसरा अपने श्रम के आधार मात्र पर जीवित रहता है। किन्तु किसी भी वर्गीय समाज में मध्यवर्ती तबके अवश्य ही होते हैं। ये तबके अपने चरित्र में ढुलमुल होते हैं। कभी ये श्रमजीवी जनता के साथ पंक्तिबद्ध हो जाते हैं तो कभी अपने स्वार्थों के चलते पूंजीपति वर्ग का हित साधन करते हैं।

वर्गीय स्थिति ही वर्गीय चेतना का निर्माण करती है। यूं तो केवल मजदूर वर्ग ही सही मायनों में वर्ग-चेतना से लैस हो सकता है किन्तु वर्गीय चेतना से हमारा तात्पर्य किसी भी वर्ग की उस समग्र चेतना से रहा है जो उसके हितों और समाज में उसकी स्थिति से निर्मित होती है। चेतना और मिथ्या चेतना के विवाद को हमने नहीं उठाया है।

वर्गीय समाज का आरंभ आदिम साम्य संघों के पतन के साथ ही अस्तित्व में आया जब परिवार, व्यक्तिगत संपत्ति और राज्यसत्ता का उदय हुआ, तभी से वर्ग बनने प्रारंभ हो गये थे।

वर्गीय समाज की सबसे पहली अवस्था दास प्रथा थी, फिर सामंतवाद आया और उसके बाद पूंजीवाद। भारतीय में मनु दास प्रथा और साथ ही सामंतवाद के भी पहले सिद्धांतकार के रूप में सामने आये। प्राचीन भारत के दास-प्रभुओं को मनु ने विचारधारा प्रदान की।

भारतीय सामंती समाज में राज्यसत्ता सामंतों के हाथों में थी, वे सामंत प्रजा का शासक वर्ग ही हुआ करते थे। बाकी वर्ग कर्म-दासों और सेवकों के रूप में जीवन यापन कर रहे थे। भारत के सामंती समाज की वर्गीय संरचना में वर्णों की प्रभुत्वकारी भूमिका थी।

आज भारतीय समाज वर्गों और उपवर्गों में विभाजित पूंजीवादी समाज है जहां पर राज्यसत्ता शोषक वर्ग - पूंजीपति वर्ग - के हाथों में है। आज भी शोषण, अत्याचार और अमानवीय दमन हमारे भूखण्ड पर निरंतर जारी है। ऐसे में वास्तविक किसी क्रांतिकारी वर्ग का उपचार न हो तो निश्चित रूप से वह किसी भटकाव का शिकार होता है व किन्हीं कुत्सित व मानव-विरोधी सामाजिक शक्तियों व तत्वों का अस्त्र बन जाता है।

वस्तुतः, आज़ादी के पूर्व राज्यसत्ता ब्रिटानी साम्राज्यवाद के हाथों में थी। उस समय उनके अपने आर्थिक हित सर्वोपरि थे। अपने आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए ब्रिटानी साम्राज्यवाद ने भारतीय समाज व अर्थव्यवस्था को अनुकूल बनाया और समस्त संसाधनों का भरपूर उपयोग अपने हित में किया। उन्होंने चाहा कि भारतीय समाज और जनमानस को इतना निर्बल बना दिया जाय कि फिर वे सिर न उठा सकें। दरअसल, यही उनका प्रण था।

उन्होंने भारतीय सामंतवादी तत्वों को भी भारतीय जनता के शोषण के लिए प्रयुक्त किया। उन्होंने शिक्षा का प्रसार किया, किन्तु मात्र इसीलिए कि बाद में पढ़ा लिखा बाबू वर्ग उनकी चाकरी में लगा रहे और उन्हीं का गुणगान करे। ब्रिटानी शासकों ने रेलवे लाइनें बिछाईं और सत्य तो यह है कि उन्होंने भारत का पूंजीवादीकरण शुरू किया। यह भी उनके अपने आर्थिक हितों से परिचालित था।

इसी दौरान आधुनिक भारत में राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग का उद्भव और परिवर्धन हुआ। भारतीय मध्यवर्ग भी (जिसमें बाबू तबके, छोटे दुकानदार, बुद्धिजीवी आदि आते थे) विकसित हो चुका था और उसकी भूमिका प्रारंभ

में सम्पूर्ण थी । राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के उद्भव के साथ अनिवार्य रूप से औद्योगिक मजदूरों की संख्या बढ़ने लगी ।

आजादी की लड़ाई में इन वर्गों-उपवर्गों की अपनी-अपनी भूमिकाएं रही हैं । सामंतवादी तत्वों को छोड़ कर समाज की इन शक्तियों की उन्मुखता साम्राज्यवाद-विरोध की ही रही है । इसका मुख्य कारण यह था कि इन वर्गों-उपवर्गों के हित सर्वप्रथम और सर्वोपरि साम्राज्यवाद से टकराते थे । यह अलग बात है कि विराट साम्राज्यवाद-विरोधी मोर्चे के अपने अंतर्विरोध थे किंतु अपने सबसे बड़े वर्ग-शत्रु साम्राज्यवाद के विरुद्ध वे प्राणपण से एकजुट थे । उनके हित अनिवार्य रूप से साम्राज्यवादी हितों से टकरा रहे थे । राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के हित तब साम्राज्यवादी हितों से मेल नहीं खा रहे थे । राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग चाहता था कि उसका अपना बाजार हो, अपनी मंडी हो । मजदूर वर्ग दुहरे-तिहरे स्तर पर शोषण से पिस रहा था किन्तु साथ ही धीरे-धीरे क्रांतिकारी चेतना से सम्पन्न होता जा रहा था । जनता के विभिन्न तबकों के छुट-पुट विद्रोह हो रहे थे, वे असंतोष से भरे हुए थे । भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की यही वर्गीय पृष्ठभूमि थी ।

पढ़े लिखे बुद्धिजीवी तबके का एक छोटा हिस्सा राजनीति, साहित्य, कला और दूसरे क्षेत्रों में अपनी चेतना को प्रतिफलित करने लगा था । यही तबका साम्राज्यवाद के विरुद्ध नेतृत्व संभाल रहा था । ब्रिटानी शासन तंत्र के अंतर्गत उन्हीं के ढांचे में शिक्षित हुए ये लोग उनके लिए वज्र खोद रहे थे । ब्रिटानी साम्राज्यवादियों ने शायद ऐसा सोचा भी न था ।

राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान साहित्य ने राष्ट्रीय इच्छाओं, आकांक्षाओं और हितों को प्रदर्शित किया । यह साहित्य साम्राज्यवाद-विरोधी प्रबल चेतना से युक्त था । यह संघर्ष से उपजा था और सामान्यतः यही उसका सकारात्मक पहलू भी था । सामान्यतः आजादी के संघर्ष में लिखा गया यह साहित्य अपने समय के एक भारी अंतर्विरोध को सामने लाया । शक्तियों का

राजनैतिक संघर्ष उसके लिए प्रमुख था और अन्य सब अंतर्विरोध व जटिलताएं गौण थीं ।

1947 में मुल्क को आजादी मिली । संघर्ष करने वाले सभी वर्गों-उपवर्गों और शक्तियों ने एकजुट होकर आजादी उपलब्ध की थी, इसलिए नये हालातों से उनकी अलग-अलग अपेक्षाएं थीं । उनकी अपेक्षाएं एक नहीं हो सकती थीं । आजादी को लेकर उनके अपने-अपने स्वप्न थे । हर वर्ग चाहता था कि आजादी उसके अनुरूप हो और पूरी तरह से न भी सही आंशिक रूप से उसके हितों की पूर्ति अवश्य करे ।

आजादी ने हमें एक पूंजीवादी संसद दी, पूंजीवादी "जनतंत्र" दिया । अब विदेशी शोषक तो नहीं रहे थे किन्तु राष्ट्रीय शोषक सक्रिय हो गये थे । ये वही थे जिन्होंने आजादी के लिए लड़ाई की थी, ये वही थे जिन्होंने राष्ट्रीय नेता गांधी को भरपूर आर्थिक सहायता दी थी । लेकिन उनके हित अब एकदम स्पष्ट हो गये थे ।

आजादी के साथ ही, आजादी के मूल्य पर देश विभाजन की घटना घटित हुई । पूरा देश अस्तव्यस्त हो गया । इस अस्त व्यस्तता से उबरने में देश को दो तीन साल लग गये । इस समय के दौरान वामपंथी व मजदूर वर्ग की शक्तियों पर जुल्म ढाया गया । इस जुल्म में और आजादी के पहले के जुल्म में कोई अंतर न था । शोषकों और दमनकारियों का प्रतिस्थापन उन्हीं के बिरादरों द्वारा हो गया । किंतु अब स्थितियां कुछ भिन्न थीं और राष्ट्रीय मंचों पर आवाज उठाने के लिए कुछ सुविधाएं मौजूद थीं । यह हमारे मुल्क पर शोषण से मुक्ति की दिशा में एक अत्यंत प्रारंभिक चरण था । यह हमारे मुल्क के इतिहास में महत्वपूर्ण मोड़ था ।

आजादी के बाद 1950 तक देश में स्थिरता आ पाई । नया संविधान प्रस्तुत किया गया । राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय नीतियां तय हुईं और शासक वर्ग का चरित्र उभर कर सामने आया । अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हमारा देश एक

गुटनिरपेक्षता की नीति पर चलता रहा, जबकि राष्ट्रीय स्तर पर शासक वर्ग की एक शोषणकारी भूमिका रही। मजदूरों, किसानों, मध्यवित्तीय कर्मियों को आजादी के बाद भी उसी प्रकार के आर्थिक शोषण का सामना करना पड़ा।

पंचवर्षीय योजनाएं बनीं, वायदे किये गये, राष्ट्रीय परम्परा और गौरव का प्रचार किया गया और न जाने क्या-क्या जाल पैदा किया गया। निम्न वर्गों को भ्रमित करने और उनके संघर्ष से उन्हें विमुख करने के लिए एक अस्त्र के रूप में इस सब को इस्तेमाल किया गया। किन्तु जनता के सचेत हिस्सों में इस पर एक भिन्न प्रतिक्रिया हुई।

जनता के सचेत और सामाजिक अंतर्विरोधों के ज्ञान से युक्त एक तबके ने (जो कि मध्यम वर्ग का ही एक हिस्सा था) इस भ्रम और छल का शिकार होने से इंकार कर दिया। मध्यवर्ग का यही हिस्सा भारतीय समाज में जनवादी शक्तियों का नेतृत्व कर रहा था। किन्तु यह स्थिति का एक पहलू था। स्थिति का दूसरा पहलू यह था कि मध्य वर्ग का एक हिस्सा एक दूसरे स्तर पर व्यवस्था से समझौते कर रहा था। ये समझौते, वास्तव में मध्यवित्तीय तबकों के वर्ग-चरित्र की एक विशेषता होते हैं। अत: इसमें कोई आश्चर्य की बात न थी। परिस्थितिजन्य विवशता अथवा दूसरे-तीसरे स्तर पर सामाजिक-आर्थिक शोषण के चलते भी जनता के ये शिक्षित हिस्से व्यवस्था की तर्कहीनता का शिकार बन रहे थे।

आजादी के बाद के साहित्य में - विशेषकर कहानियों में - उपर्युक्त दोनों उन्मुखताएं स्पष्ट देखने को मिलती हैं। और इनका साफ-साफ रूप में नई कहानी आंदोलन में मिलता है। इस आंदोलन पर प्राय: जो अराजनीतिक होने का आरोप मढ़ा जाता है वह इस कारण भी कि उभरते और प्रखर होते सामाजिक अंतर्विरोधों को सीधे-सीधे व्यक्त करने वाली कहानियां कम लिखी गयीं। यह अलग बात है कि सामाजिक अंतर्विरोधों को

व्यक्त करने वाली इन अल्प कहानियों में इतनी संभावनाएं निहित थीं कि आगे चल कर कहानी आंदोलन को इन्हीं कहानियों ने परम्परा की एक कड़ी के रूप में प्रेमचंद और पूर्व के जनवादी कथा-साहित्य से जोड़ा ।

"नई कहानी" का जन्म सन् 1950 के लगभग से माना जाता है । यह भी कहा जाता है कि "पूस की रात" और "कफन" जैसी प्रेमचंद की कहानियों में इन कहानियों के बीज छिपे पड़े थे । किन्तु यह मानना एकदम ही अनुचित होगा क्योंकि कोई भी साहित्यिक आंदोलन अपनी पृष्ठभूमि में एक सामाजिक-आर्थिक आधार ले कर चलता है । कोई भी साहित्यिक आंदोलन अपने समय की वस्तुगत परिस्थितियों से अनिवार्य रूप में प्रभावित होता है । यह किसी खास वर्ग की क्रिया-प्रतिक्रिया और उसकी मानसिकता को भी व्यक्त करता है । यहां पर किसी खास वर्ग की कोटि चेतना और उसकी प्रतिक्रिया के रूप में आत्मगत स्थिति भी सक्रिय होती है । इस प्रकार साहित्यिक आंदोलन अपने और व्यापकतर अर्थ में आत्मगत और वस्तुगत स्थितियों, परिस्थितियों की क्रिया-प्रतिक्रिया से जनित होता है ।

इस प्रकार नई कहानी आंदोलन के उद्भव के पीछे एक नई मानसिकता सक्रिय थी, जो आजादी के पूर्व के कथाकारों से इसको अलगाती है । अज्ञेय, यशपाल, जैनेन्द्र से नई कहानी इन्हीं अर्थों में भिन्न भी है । इसे प्रायः आधुनिकता के नाम से अभिहित किया जाता है ।

अलगाव के इसी बिंदु पर नई कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियां उभर कर सामने आती हैं ।

नई कहानी में कथ्य के धरातल पर जो नयापन है वह विविध रूपों में सामने आता है । कहीं यह विसंगत परिवेश के चित्रण के रूप में सामने आता है तो कहीं कुंठा और मनःस्थिति के चित्रण के रूप में । निर्मल वर्मा की "डायरी का खेल," राजेन्द्र यादव की "छोटे-छोटे ताजमहल" इसी प्रकार की कहानियां हैं । नई कहानी में केंद्रीय पात्रों के रूपायन की प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है जो

साथ ही सामाजिक जीवन की समग्रता और संतुलन में व्यक्त करने के प्रयास भी दिखाई पड़ते हैं। नई कहानी कहीं प्रश्नों को छोड़ती है तो कहीं प्रश्नों का सृजन करती है और इस प्रकार अपने ही अंतर्विरोध को व्यक्त करती है। नई कहानी गांव की कहानी भी है और शहर की कहानी भी। नई कहानी के अंतर्गत ग्रामीण संबंधों को ले कर लिखी गयी कहानियों में सामाजिक पृष्ठभूमि को ही मुख्यत: लिया गया है। इन कहानियों के आजादी के बाद के ग्रामीण समाज की स्थिति का, आजादी के बाद टूटते मूल्यों का, बनते-बिगड़ते संबंधों का चित्र खींचा गया है। पुराने और नये संस्कारों के बीच का टकराव इन कहानियों में देखने को मिलता है।

नई कहानी में आधुनिकता को ले कर भी काफी कुछ लिखा गया है। प्राय: नई कहानी की आधुनिकता को आजादी के बाद के यथार्थ-बोध से जोड़ कर देखा जाता है। आजादी के बाद, इसमें संदेह नहीं कि, नये संबंधों को ले कर लिखी गई कहानियां भी इस दौरान प्रचुर रूप से सामने आई हैं, किन्तु सभी कहानियां आधुनिकता की श्रेणी में नहीं आ सकतीं। आधुनिकता सामयिक यथार्थ बोध से जुड़ी हुई है और इसी अर्थ में हम नई कहानी में आधुनिकता के दर्शन करते हैं।

नई कहानी को ले कर अनुभूति की प्रामाणिकता की बात भी बहुत कही-सुनी गई है परन्तु अनुभव जन्य यथार्थ, ऐसा नहीं कि सभी स्थितियों में सार्थक रूप में कहानियों में व्यक्त हो। यहां भी कारक महत्वपूर्ण होता है वह है लेखक की रचना दृष्टि अथवा स्थितियों, घटनाओं आदि के प्रति उसकी 'एप्रोच'। नई कहानी में जहां व्यक्ति केंद्रित दृष्टि के दर्शन होते हैं वहां समाजपरक कहानियों की भी कमी नहीं है। आत्म केंद्रित दृष्टि मानवीय सत्य को अलगाव में देखती है और यथार्थ से पलायन करती है। आत्मकेंद्रित दृष्टि सामाजिक यथार्थ से इसलिए भी पलायन करती है कि वह जीवन को एक भावुक और लिजलिजी वस्तु के रूप में देखती है। राजेन्द्र यादव, मन्नू भण्डारी, मोहन राकेश और निर्मल वर्मा

आदि, नई कहानी के प्रमुख कथाकारों का कृतित्व भी न्यूनाधिक रूप में इस प्रवृत्ति का शिकार है, यद्यपि इन कहानीकारों ने अच्छी कहानियाँ भी दी हैं।

पूरबी और फणीश्वर रेणु, अमरकांत, भीष्म साहनी, हरिशंकर परसाई और शेखर जोशी आदि की कहानियाँ अधिक समाजपरक हैं और जीवन के प्रति समग्रसंतुलित दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न लगती हैं। ये कहानीकार सामाजिक विद्रूप और व्यंग्य तथा समाज के अंतर्विरोधों को उभारने में प्रयत्नरत रहे हैं।

नई कहानी ने हिन्दी कहानी के इतिहास को शिल्पगत, भाषागत अर्थों में भी नया मोड़ दिया है। आजादी के पूर्व के लेखकों के शिल्प और नये कथा लेखकों के शिल्प में मूलभूत अंतर यह झलकता है कि आजादी के बाद सारे संदर्भों और सामाजिक कथ्य में एक रूपांतरण के चलते बिम्बों, प्रतीकों और भाषा की नयी योजना देखने को मिलती है। आत्म केंद्रित जीवन को ले कर लिखी गई कहानियाँ और समाजपरक कथ्य की कहानियाँ, दोनों में यह नई योजना देखने को मिलती है। आजादी के बाद की कहानियों में जीवन उतना सपाट और सीधा नहीं है, उसमें जटिलताएं हैं और नई मानसिक स्थिति, उपेक्षित है। नई कहानियों में व्यक्ति जीवन को कई-कई स्तरों पर जी रहा है। ऐसी स्थिति में नये शिल्प का अवलम्बन एक सायास प्रयास नहीं बल्कि एक अनिवार्यता सिद्ध हुआ है। यही कारण है कि नई कहानी में कथानक का ह्रास हुआ है। [redacted] कई कहानियाँ ऐसी मिलती हैं जो कथानक से शून्य हैं तथा जिनमें कुछ कथा-स्थितियाँ मात्र हैं।

नई कहानी में मूलतः मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण मिलता है। खासकर शहरी जीवन को ले कर लिखी गई कहानियों के पात्र मध्यवित्तीय हैं। इसलिए ये जीवन को टुकड़े-टुकड़े स्तर पर भी जी रहे हैं। अधिकांशतः ये पात्र अपनी मानसिकता में निम्नपूंजीवादी रुझानों से ग्रस्त हैं। ये जीवन में

हताशा और कुंठा के शिकार हैं, अकेलेपन और ऊब का सामना कर रहे हैं। शहरी जीवन को ले कर लिखी गई कुछ कहानियों में निम्नवर्गीय जीवन की भी अभिव्यक्ति मिलती है किन्तु ऐसा बहुत कम है। हाँ, ग्रामीण जीवन के कथाकारों - फणीश्वर नाथ रेणु, शैलेश मटियानी, मार्कण्डेय, शिव प्रसाद सिंह - की कहानियों में गाँवों के गरीबों का जीवन देखने को मिलता है। इन कहानियों में किसान जीवन का खाका ही मुख्य रूप से खींचा गया है। यहाँ पर हमें निम्न वर्गों के जीवन का चित्रण देखने को मिलता है। ग्रामीण संदर्भों को ले कर लिखी गई इन कहानियों के पात्र आर्थिक और सामाजिक शोषण के शिकार हैं। इन कहानियों में भी ये पात्र शुद्ध राजनीतिक संघर्ष में रत नहीं दिखाये गये हैं। इनके सुख दुःख, आशा-निराशा, उनकी आकांक्षाएं इन कहानियों के कथ्य का निर्माण करती हैं।

नई कहानी में अभिव्यक्त वर्गीय चेतना के कई पहलू हैं। इन्हें इन चार संदर्भों में बांट कर देखा जा सकता है - राजनीतिक संदर्भ, सामाजिक-आर्थिक संदर्भ, वैचारिक-दार्शनिक संदर्भ तथा परम्परा व इतिहास का संदर्भ।

नई कहानी आंदोलन का काल एक राजनीतिक उथल-पुथल का काल था। स्वतंत्र हो गया पूंजीवाद एक तरफ न्यूनाधिक रूप में सामंतवादी अवशेषों को तोड़ रहा था और दूसरी ओर संघर्षरत श्रमिक जनता पर दमन ढा रहा था। फासिस्ट ताकतें तथा सम्प्रदायवादी ताकतें सिर उठाने लगी थीं। नई कहानी के अधिकांश लेखक इन स्थितियों के बीच जी रहे थे, फिर भी उनके लेखन में अपेक्षित राजनीतिक प्रभाव का अभाव है।

नई कहानी में राजनीति को ले कर कोई वर्गीय स्वर सीधे-सीधे नहीं उभरता। राजनीति के प्रति इन कथाकारों में एक नीरस तटस्थता का बोध टपकता है। इस प्रकार नई कहानी में सीधे-सीधे राजनीति का दखल नहीं है, परन्तु जहाँ कहानी में लेखक आज की व्यवस्था व राजनीति के संबंध में प्रश्न उठाता है, वहाँ उसकी प्रगतिशील मध्यवर्गीय चेतना मुखरित हुई है।

हरिशंकर परसाई की कहानी 'पोस्टरी एकता' में देश में विज्ञापित एकता पर करारी चोट है। निर्मल वर्मा की कहानी 'लंदन की एक रात' में रंगभेद का संघर्ष उठाया गया है। 'जार्ज पंचम की नाक' (कमलेश्वर) में देश की राजनीति पर करारी चोट है। इसी प्रकार 'जलवा,' 'आत्मसाक्षी' (फणीश्वर नाथ रेणु), 'कर्मनाशा की हार' (शिव प्रसाद सिंह) आदि कहानियाँ भी व्यवस्था व गंदी राजनीति के विरुद्ध ही लिखित हैं।

नई कहानी में सामाजिक-आर्थिक जीवन का चित्रण दो रूपों में मिलता है। एक तो असंगत सामाजिक परिवेश में घुट रहे तथा अकेले-अकेले पड़ गये आदमी के चित्रण मात्र के रूप में तथा दूसरे सामाजिक-आर्थिक जीवन के अंतर्विरोधों के चित्रण के रूप में।

'एक कमजोर लड़की की कहानी,' 'प्रतीक्षा' (राजेंद्र यादव), 'यही सच है' (मन्नू भंडारी), 'सितम्बर की एक शाम' (निर्मल वर्मा) आदि कहानियाँ सामाजिक-आर्थिक जीवन का यथार्थ कथन नहीं करतीं। इन कहानियों के पात्र असामान्य किस्म के हैं। दूसरी ओर 'दोपहर का भोजन,' 'जिंदगी और जोंक' (अमरकांत), 'सेलर' (रामकुमार), 'टूटना' (राजेंद्र यादव), 'चीफ की दावत' (भीष्म साहनी) आदि कहानियाँ इसलिए यथार्थपरक बन जाती हैं क्योंकि ये सामाजिक-आर्थिक संघर्षों की गढ़ी हुई हैं।

वैचारिक-दार्शनिक स्तर पर नई कहानी की नई चेतना स्पष्ट रूप में सामने आई है। नई कहानी में कई कहानियाँ अस्तित्ववाद के पूंजीवादी दर्शन के प्रभाव से ग्रस्त हैं। निराशावाद आत्म-परायापन, अकेलापन, विराग, निस्संगता आदि, विघटित जीवन मूल्यों के नये रूप, हमें इनमें देखने को मिल जाते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि नई कहानी में इन रूपों में यथार्थ

का चित्रीकरण दूसरे महायुद्ध के बाद पश्चिम में लिखे गये साहित्य के समान नहीं है। नई कहानी में उतनी विकृतता नहीं मिलती। फिर भी, यह एक निम्नपूंजीवादी मानसिकता की अभिव्यक्ति है जो व्यक्ति को उसके अनिवार्य संघर्ष से विमुख कर देता है। "परिन्दे" (निर्मल वर्मा) दुख अकेलेपन, निराशा और विफल भाव को गहराता है। "प्रतीक्षा" (राजेन्द्र यादव) में एक व्यर्थतापूर्ण प्रतीक्षा है। यह प्रतीक्षा जैसे "गोदो" ( ) की प्रतीक्षा है।

ऐसा नहीं कि वैचारिक-दार्शनिक स्तर पर निम्नपूंजीपतवर्गीय मानसिकता ही - जो कि निस्सार जीवन को नियति मानने को और उन्मुख करती है - समूची नई कहानी में व्याप्त है। स्वयं जीवन की ठोस समस्याओं को व्यक्त करने वाली कहानियाँ भी हैं जो कि वैचारिक स्तर पर हमें बेहद प्रभावित करती हैं। "जानवर और जानवर" (मोहन राकेश), "जहाँ लक्ष्मी कैद है" (राजेन्द्र यादव), "जिंदगी और जोंक," "डिप्टी कलक्टरी" (अमरकांत) आदि कहानियाँ भी ऐसी हैं।

"नई कहानी" मार्क्सवाद-लेनिनवाद की विचारधारा से सीधे-सीधे प्रभावित नहीं है। इस आंदोलन के दौरान इन लेखकों ने यह दावा भी नहीं किया कि वे विचारधारा के रूप में ■ मार्क्सवाद-लेनिनवाद को अपना रहे हैं। नई कहानी के कथाकारों की चेतना समग्रता में मध्यवर्गीय समाज के विभ्रम व ऐसी विचारधारा तथा जीवन के प्रति ऐसे दृष्टिकोण के रूपों में अभिव्यक्त होती है, जो कहीं-कहीं, सामाजिक धरातल पर शोषित वर्गों के पक्ष में पड़ता है और अधिकांशतः ढुलमुल है। यही कारण है कि कहीं-कहीं ये कथाकार प्रेम, मानवीय पीड़ा आदि को इतना आत्मकेंद्रित बना देते हैं कि अंततः वे पूंजीवादी विचार तंत्र से उद्भूत वर्गों के साथ पंक्तिबद्ध हो जाते हैं।

निस्संदेह ऐसा यांत्रिक रूप में नहीं हुआ है। यह प्रश्न अत्यंत विशिष्ट है। इसलिए कि लेखक का वर्ग-चरित्र उसकी चेतना को सदैव ही प्रभावित करता है।

परम्परा और इतिहास के प्रति नई कहानी के कहानीकारों का क्या रुख है, यह उनकी वर्ग-दृष्टि और वर्ग चेतना के उद्घाटन में एक अत्यंत अनिवार्य कारक है। जो कहानियां धर्मों और वर्गों में बांट कर सत्य को देखती हैं तथा मृत्यु और पीड़ा को अंतिम सत्य मानने की ओर ले जाती हैं, वे कहानियां निश्चित रूप से इतिहास को नकारती हैं। इस प्रकार की कहानियां, नई कहानी के अंतर्गत निश्चित रूप से अधिक मिलती हैं। इतिहास और परम्परा से असम्पृक्त करके घटनाओं, जीवन-स्थितियों व प्रश्नों पर दृष्टिपात करना उसे विभ्रमित कर देने वाली मिथ्या चेतना का अंग है जो वैज्ञानिक विचारों तथा विचारधारा मात्र की विरोधी है। यही नई कहानी में बड़े पैमाने पर अभिव्यक्त हुआ है।

इस प्रकार नई कहानी की वर्गीय चेतना विविध रूपों में अभिव्यक्त हुई है। अंत में यही कहा जा सकता है कि समग्र रूप में नई कहानी में कुलकुल मध्यवर्गीय (निम्नपूंजीपति वर्गीय) चेतना की अभिव्यक्ति मिली है तथा इस अभिव्यक्ति के भिन्न-भिन्न धरातल हैं। हां कुछ कहानियां जनवादी चेतना की अभिव्यक्ति करती हैं। इन्हीं कहानियों ने आगे चल कर अपनी परम्परा भी स्थापित की है।

---00---

परिशिष्ट

संदर्भ ग्रंथ-सूची

उपजीव्य ग्रंथ

1- अमरकांत : देश के लोग
आधुनिक कथा प्रकाशन, इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण, 1964

2- अमरकांत : जिंदगी और जोंक,
आधुनिक कथा प्रकाशन,
फरवरी, 1958

3- निर्मल वर्मा : परिंदे,
पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस,
दिल्ली-1960

4- निर्मल वर्मा : पिछली गर्मियों में,
राजकमल प्रकाशन, 1968

5- निर्मल वर्मा : जलती झाड़ी,
राजकमल प्रकाशन, 1966

6- फणीश्वर नाथ रेणु : ठुमरी,
राजकमल प्रकाशन,
पहला संस्करण

7- मन्नू भंडारी : मेरी प्रिय कहानियाँ,

8- मार्कण्डेय : हंसा जाई अकेला,
नया साहित्य प्रकाशन,
दूसरा संस्करण

9- मोहन राकेश : क्वार्टर,
राजपाल एंड सन्स,
पहला संस्करण, 1972

10- राजू कुमार : वक्त,
राजकमल प्रकाशन, 1968

11- राजेंद्र यादव (संपादक) : कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ
पराग प्रकाशन,
पहला संस्करण, 1976

12- राजेंद्र यादव : खेल खिलौने,
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी,
पहला संस्करण, 1954

13- राजेंद्र यादव : किनारे से किनारे तक,
आत्माराम एंड संज, 1963

14- राजेंद्र यादव : रेखाएं, लहरें और परछाइयाँ,
प्रकाशन मंदिर, आगरा
प्रथम संस्करण

15- राजेंद्र यादव : जहाँ लक्ष्मी कैद है,
राजकमल प्रकाशन
प्रथम संस्करण, 1957

16- राजेंद्र यादव : एक दुनिया समानांतर,
अक्षर प्रकाशन,
दूसरा संस्करण, 1974

<u>उपस्कारक ग्रंथ</u>

<u>अंग्रेजी :</u>

17- ए०आर० देसाई : डेवलपमेंट्स इन इंडिया,
पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, 1973

18- जे०सी०कौशाम्बी : एक्सप्लोरेशन एलीय

19- हीमिता पाण्डे : ए सिटी बाफ इंडिया,
पेन्गुइन बुक्स, 1977

20- आर०एस०शर्मा : एन्शियंट इंडिया,
यूनिवर्सिटी पब्लिशिंग हाउस, 1977

21- पीप मार्टीनीमिव : द लॉर्ड्स ब्लाव

22- मिलान जीरो : एनशायंट इंडिया टुडे

<u>हिन्दी :</u>

23- कमलेश्वर : नई कहानी की भूमिका,
शब्दकार, 1978

24- ताराचंद : भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन
का इतिहास
भाग-1

25- देवीशंकर अवस्थी (संपादक) : नई कहानी : संदर्भ और प्रकृति

26- धनंजय : समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि

27- नामवर सिंह : कहानी : नई कहानी,
लोकभारती प्रकाशन, 1973

28- रजनी पाम दत्त : आधुनिक भारत कांग्रेस और गांधी
पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, 1974

29- रामशरण शर्मा : भारतीय सामंतवाद, राजकमल प्रकाशन, 1973

30- रामदरश मिश्र (संपादक) : हिन्दी कहानी : दो दशक की यात्रा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 19[illegible]

31- अ०स्पिरकिन और ओ०याखोत : द्वंद्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1975

32- लक्ष्मणदत्त गौतम : आधुनिक हिंदी कहानी साहित्य में प्रगति चेतना, [illegible] प्रकाशन, 1972

33- सुरेंद्र शर्मा : नई कहानी कथ्य : शिल्प : संवेदना, कसौटी प्रकाशन, पहला संस्करण

34- सुरेश सिन्हा : हिंदी कहानी : उद्भव व विकास, अशोक प्रकाशन

35- श्रीपाद अमृत डांगे : आदिम साम्यवाद से दास व्यवस्था तक का इतिहास, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, तीसरा संस्करण, 1978

36- डॉ० सुरेन्द्र : नई कहानी : प्रकृति और पाठ

पत्रिकाएं

1-	आलोचना	:	जनवरी-मार्च, 1974 जुलाई, 1974
2-	नई कहानियाँ	:	मई, 1970
3-	उत्तर	:	जुलाई, 1961

-0000000000000000000-